प्रकाशक :—
नाहटा ब्रदर्स
४ जगमोहन मल्लिक लेन
कलकत्ता-७

प्राप्तिस्थान :—
परिचंदजी बोथरा
१२, पारसी बगान लेन
कलकत्ता—६

मुद्रक :
सेठ ब्रदर्स
७०बि, धरमतल्ला स्ट्रीट
कलकात्त-१३

श्री अभयजैन ग्रन्थमाला ग्रंथाङ्क २०[illegible]

दादा श्री जिनकुशलसूरि

लेखक

अगरचंद नाहटा

भँवरलाल नाहटा

द्रव्य सहायक :-

श्रीमान् प्रसन्नचंदजी बोथरा की स्मृति में

श्री परिचंदजी, श्रीचंदजी, गंभीरचंदजी बोथरा

कलकत्ता

प्रकाशक :—

नाहटा ब्रदर्स

४ जगमोहन मल्लिक लेन

कलकत्ता-७

द्वितीयावृत्ति	वीर संवत्	निः शुल्क
१०००	२४८९	

प्राक्कथन

—०⊃०—

जैन शासन की महान् सेवा करने वाले प्रभावक आचार्यों में खरतर गच्छीय दादाजी के नाम से प्रसिद्ध युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरिजी, उनके सुशिष्य मणिधारी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी उसी परम्परा के श्रीजिनकुशलसूरिजी और युगप्रधान श्री जिनचंद्रसूरिजी, इन चारों आचार्यों की बड़ी ख्याति है। भारत के कोने-कोने में उनके स्मारक गुरुमन्दिर, मूर्ति और पादुकाएं प्रतिष्ठित पूज्यमान हैं। इनके प्रति जनसाधारण की अटूट भक्ति है और इसके फलस्वरूप उन्हें इहलौकिक और पारलौकिक सुख सुविधाएं प्राप्त करने में सदा सहायता मिलती रहती है। यों तो आपकी स्तवना में सैकड़ों स्तुति, स्तोत्र कई शताब्दियों से कविगण निरन्तर रचते आए हैं और पट्टावलियों आदिमें उनकी जीवनीका संक्षिप्त विवरण मिलता है पर आजके बुद्धिवादी युग में ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार से लिखे हुए उनके जीवनचरित्र की विशेष मांग है। हमने इस आवश्यकता का अनुभव कर सं० १९९१ में सम्राट अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान श्रीजिनचंद्रसूरिजी का विस्तृत

जीवनचरित्र शताधिक ग्रंथों के आधार से तय्यार कर प्रकाशित किया था, और तभी से हमारी यह इच्छा रही कि इनसे पूर्ववर्ती तीनों दादासाहब का ऐतिहासिक जीवन चरित्र भी शीघ्र ही प्रकाशित किया जाय।

उपर्युक्त यु० श्री जिनचन्द्रसूरिजी की जीवनी के तो अनेक समकालीन साधन प्राप्त हो गए पर अन्य तीनों दादा गुरुओं में से श्री जिनदत्तसूरिजी का तो महत्वपूर्ण विवरण सं० १२९५ में रचित सुमति गणि कृत गणधर सार्द्धशतक वृत्ति में ठीक से मिलता है पर श्री जिनकुशलसूरिजी और जिनचंद्रसूरिजी के सम्बन्ध में परवर्ती पट्टावलियों के अतिरिक्त महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साधन प्राप्त नहीं थे। संयोग से बीकानेर के उ० श्री क्षमाकल्याणजी के ज्ञानभण्डार में युगप्रधानाचार्य गुर्वावली की ८६ पत्रों की एक प्रति हमें प्राप्त हुई और उसमें इन दोनों आचार्यों का परिचय विशद रूप से प्राप्त हो गया। फलतः सं० १९९५ में उपर्युक्त गुर्वावली के मुख्य आधार से 'दादा श्रीजिनकुशलसूरि' नामक ग्रन्थ सिलहट में केवल ४-५ दिनों में लिखकर प्रकाशित किया गया। उसके पश्चात् 'मणिधारी जिनचन्द्रसूरि' और 'युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि' नामक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये गये। हमारे लिखित चारों दादागुरुओंके जीवनचरित्रों की प्रमाणिकता से प्रभावित होकर पूज्य उपाध्यायजी श्रीलब्धिमुनिजी ने उनके आधार से संस्कृत पद्यबद्ध चरित्र तत्काल निर्माण कर भेजे। स्वर्गीय गणिवर्य्य

श्री बुद्धिसागरजी ने चारों चरित्रोंका गुजराती अनुवाद करवा के अपने संपादकत्व में श्री महावीर स्वामी देरासर ट्रष्ट में बम्बई से प्रकाशित करवा दिये। इससे गुजराती भाषा भाषियों के लिये दादागुरुओं के ऐतिहासिक परिचय प्राप्त करना सुलभ हो गया। श्री जिनहरिसागरसूरिजी ने भी चारों दादासाहब की पूजाएं हमारे लिखित चरित्रों के आधार से बनाई, जो प्रकाशित भी हो चुकी है। इस तरह हमारे ग्रन्थों का जैन समाज द्वारा समुचित आदर हुआ।

"दादा श्रीजिनकुशलसूरि" पुस्तक प्रकाशित हुए २२ वर्ष हो गए और वह अभी कई वर्षों से अप्राप्य थी, अतः उसका प्रस्तुत नया संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है। इसमें यथा स्थान कुछ संशोधन किए गये हैं और किंचित परिवर्द्धन भी। परिशिष्ठ 'ख' में श्रीजिनकुशलसूरि विरचित "शांतिनाथ चरित्र" आगरा स्थिति विजयधर्मसूरि ज्ञानमन्दिर की संग्रह पुस्तिका से नक्ल करके प्रकाशित किया जा रहा है, एवं अन्य भी कतिपय अप्रकाशित स्तोत्रादि प्राचीन प्रतियों से उद्धृत कर प्रकाशित किये जा रहे हैं जो प्रथम संस्करण में नहीं थे। प्रथमावृत्ति में जो विशेष नामों की सूची थी, जनसाधारण के लिये विशेष उपयोगी नहीं होने से इस संस्करण में नहीं दी गई है।

श्री जिनकुशलसूरिजी की स्वर्गतिथि के सम्बन्ध में प्रथम संस्करण में जो टिप्पणी थी वह प्रस्तुत संस्करणमें नहीं दी गई।

क्योंकि एक विशिष्ट महापुरुष द्वारा मिती फाल्गुन कृष्ण १५ को श्रीजिनकुशलसूरिजी के स्वर्गवास होने का दैवी संकेत मिलने पर उसे ही मान्य रखना उचित समझा गया। एवं अन्य भी कतिपय अप्रकाशित स्तोत्रादि प्राचीन प्रतियों से प्रकाशित किए जा रहे हैं। इसी दैवी संकेत से यह भी ज्ञात हुआ है कि श्रीजिनकुशलसूरिजी का अभी "कर्मेन्द्रदेव" नाम है।

गुर्वावली में श्री जिनकुशलसूरिजी की कई मूर्तियां प्रतिष्ठित होने और उनके द्वारा कई स्तोत्र रचे जाने का उल्लेख है पर उनमें से प्राचीन मूर्तियां कोई भी प्राप्त नहीं हुई और स्तोत्र भी पूरे उपलब्ध नहीं हैं, जिनकी खोज की जानी आवश्यक है। जिस गुर्वावली के मुख्य आधार से यह ग्रन्थ लिखा गया है वह श्रीजिनकुशलसूरिजी के स्वर्गवास के ४-५ वर्ष बाद तक की ही प्राप्त है। मालूम होता है कि समकालीन व्यक्ति घटनाओं को साथ ही साथ लिखते रहे हैं इसलिए इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ की प्रामाणिकता निर्विवाद है। यह गुर्वावली पुरातत्त्वाचार्य जिनविजयजी से सम्पादित होकर सिंघी जैन ग्रन्थमाला से प्रकाशित की जा चुकी है। उसका हिन्दी अनुवाद भी श्रीजिनदत्तसूरि सेवासंघ द्वारा प्रकाशित खरतर गच्छ इतिहास भाग १ में छप चुका है।

इस ग्रन्थ की भूमिका मुनि जिनविजयजी ने लिखने की कृपा की थी अतः हम उनके अनेक अभारी हैं। इस ग्रन्थ

के परिशिष्ट में प्रकाशित श्रीजिनकुशलसूरि कृत श्रीजिनचंद्रसूरि चतुःसप्ततिका स्व० गणिवर्य्य बुद्धिसागरजी महाराजने लींबड़ी भण्डार से नकल करके और श्री जिनकुशलसूरि चतुष्पदिका की प्रतिलिपि स्वर्गीय पी० के० गोडेने भंडारकर ओरियन्टल इंस्टीट्यूट, पूना, की प्रति से करवा के भिजवाई थी अतः हम दोनों महानुभावों के अभारी हैं। श्री जिनकुशलसूरि सप्ततिका की रचना उ०जयसागरजी ने सिन्धप्रान्त के मलिकवाहण नगर में की थी। यह रचना गुरुभक्तों में पर्याप्त प्रसिद्ध रही है, पर उनमें ७० पद्यों के स्थान में केवल १५पद्य ही पाये जाते हैं। सम्भवतः प्रतिदिन स्वाध्यायकी सुविधा के लिये मूल रचना का संक्षिप्तकरण कर दिया गया है। सं० १५०५ की लिखित प्रति में इसकी १४ गथाएं मिलती हैं इसलिये इसका संक्षिप्तरूप जयसागरोपाध्याय की विद्यमानता में ही प्रसिद्ध हो गया मालूम होता है।

श्रीजिनकुशलसूरिजी की प्राचीन मूर्तियों में सं० १४८६ प्रतिष्ठित एकमूर्ति मालपुरा में थी जिसका फोटो श्रीनथमलजी चंडालियां से मंगवाकर इस ग्रन्थ में दिया है। ❀

भक्तवत्सल गुरुदेवकी जीवनीकी यह द्वितियावृत्ति पाठकों के करकमलों में रखते हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। निवेदक—

अगरचंद नाहटा, भँवरलाल नाहटा

❀ यह मूर्ति अभी मणिधारी जिनचन्द्रसूरिजी के स्मारक महरोली (दिल्ली) के शत्रुञ्जय रचना मंदिर में पूज्यमान है जिसका लेख इस प्रकार है * :—

१— सवत् १४८६ वर्षे ज्येष्ठ सुदि ५ शुक्रे सा० रामदेव भार्या मूलादे पुत्र। २—सा० साहणकेन श्रेयाऽर्थं श्रीजिनकुशलसूरि मूर्ति का० ३— श्रीखरतरगच्छे श्रीजिनवर्द्धनसूरि पट्टे प्र० श्रीजिनचन्द्रसूरिभिः।

अजीमगंज निवासी धर्मिष्ठ ओसवाल समाज-भूषण स्वर्गीय

बाबू प्रसन्नचन्दजी बोथरा

बंगालके जैन समाज में धर्मिष्ट और संस्कारसम्पन्न परिवारों में अजीमगंज के बोथरा परिवार का स्थान महत्त्वपूर्ण है। अभावग्रस्त और मध्यवित्त भाइयों पर इस परिवार के मुख्य व्यक्ति महामना श्री प्रसनचन्दजी बोथरा की कल्पवृक्ष की भांति सदा गहरी छाया रहती थी, इसी कारण आपका नाम आज भी समाज में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। आपका जीवनसौरभ कीर्ति-कलापों से ओत-प्रोत था क्योंकि उदारभावना आपकी जीवन सहचरी थी। देव गुरु धर्म पर आपकी अटल आस्था थी और उसी श्रद्धा-भक्ति का बीज आपके वंश में विरासत रूप से पल्लवित और कुसुमित है। परिणामतः आज भी आपका परिवार-दान, शील, तप और भाव—चारों प्रकार के धर्मसौरभ से आमोदित है। यह सब पुण्यात्मा बाबू प्रसनचन्दजी साहब का पुण्यप्रभाव है, अतः पाठकों को यहां आपका संक्षिप्त परिचय कराया जाता है।

श्रीमान् बाबू प्रसनचन्द बोथरा का जन्म सं० १९४९ मिती वैशाख कृष्णा १५ को अजीमगंज में हुआ था। आपके पिताजी का नाम सितावचन्दजी बोथरा था। आपकी शिक्षा अजीमगंज में हुई। सोलह वर्ष की उम्र तक आप वहीं पर रहे। तदनन्तर आप कलकत्ता आये और पाट का व्यापार—दलाली का काम करने लगे। अपने सद्गुणों के कारण



स्वर्गीय बाबू प्रसनचन्दजी बोथरा

आपने इस काम में बड़ी उन्नति की। आप बड़े ही मिलनसार और व्यवहारकुशल थे, इसलिये समस्त दलाल-परिषद में आप सर्वोपरि बन गए। आपके सौजन्य एवं उदार प्रकृति के कारण पाट के समस्त व्यापारी और दलाल-मण्डल में आपका बड़ा आदर-सम्मान था।

सुयोग्य पुत्रों के स्कंधोंपर कार्यभार सौंपकर निवृत्त हो जाने की मर्यादा आर्य संस्कृति में पुरातन काल से चली आ रही है। जब आप ५२ वर्ष के हो गए तो अपने तीनों सुयोग्य पुत्रों—परिचन्दजी, श्रीचन्दजी, गंभीरचन्दजी को सारा कारोबार का भार सौंपकर आपने विश्राम ग्रहण कर लिया। आप अपने समय का सदुपयोग धर्म-ध्यान में बिताते हुए स्वधर्मी बन्धुओं की सेवा में सविशेष संलग्न रहते थे।

आप बड़े दयालु और कोमल हृदय के थे। आपकी मनोभावना अत्यन्त विशाल और उदार थी। आपके दान स्रोत का अजस्रप्रवाह सतत चालू था और आशा करके आया हुआ कोई भी व्यक्ति खाली हाथ नहीं लौटता था। सामान्य स्थिति के ओसवाल-बन्धु का दुःख-दर्द ज्ञातकर आप याचित-अयाचित यथोचित सहायता प्रदान करते रहते थे। आपमें यशोलिप्सा लेशमात्र भी नहीं थी। अत. गुप्तदान देनेमें अतिशय आनन्द का अनुभव करते और चुप-चाप वर्षभर की उपभोग्य अभीष्ट वस्तु तदेच्छु वर्ग के यहां भिजवा देने की प्राचीन परम्परा के परिपालन के कारण अजीमगंज का समस्त समाज आपके लिए तरस रहा है।

अजीमगंज में धार्मिक और व्यवहारिक शिक्षा में प्रबन्ध का अभाव देखकर आपने अपनी धर्मपत्नी के स्मरणार्थ—श्री पवनकुमारी-ज्ञानमन्दिर नामक ज्ञानशाला की स्थापना की। इस संस्था का उद्घाटन-समारोह सं० २००५ में सिद्धान्त-महोदधि, व्याख्यान वाचसपति जैनाचार्य श्रीपूज्यजी श्रीजिन-विजयेन्द्रसूरिजी महाराज के कर-कमलों द्वारा कराया गया था। आज भी इस शिक्षण संस्था द्वारा अनेक बालक-बालिकाएं शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

श्री प्रसनचन्दजी साधारणतया स्वस्थ और 'यथा नामस्त-थागुणः' के अनुसार प्रसन्न रहते थे। पर शरीर नाशवान है, रोम-रोम में रोगों का उत्पत्ति-स्थान है, कब कौनसा रोग उत्पन्न हो जाय ? पता नहीं। आप भी अकस्मात् माघकृष्ण ११ को अस्वस्थ हो गए। उपचार पर उपचार कराये गये पर "खूटी को बूटी नहीं" के अनुसार आप भवयात्रा की अवधि परिपूर्ण कर मिती माघ कृष्ण १३ को मध्यान्ह में साढ़े ग्यारह बजे इस नश्वर देह का त्यागकर परलोकवासी हो गए। आप आज संसार में नहीं हैं पर आपकी कीर्ति देह अमर है।

आपके सुयोग्य पुत्र श्रीपरिचन्दजी साहब आदि लाखों रुपया सत्कार्यों में स्वधर्मीभक्ति आदि सप्तक्षेत्रों में सतत् व्यय कर रहे हैं। आपका सारा परिवार धर्मिष्ठ तपस्वी एवं सदाचारवान् है। दादासाहब के आप परमभक्त हैं, और उन्हीं गुरुदेव के परमभक्त अपने पूज्य पिताजी की स्मृति "दादा श्रीजिनकुशलसूरि" ग्रन्थ की यह आवृत्ति गुरुभक्तों के करकमलों में समर्पण करते हुए पितृभक्ति और गुरुभक्ति के द्विगुणित लाभसे लाभान्वित हो रहे हैं; अतः साधुवादार्ह हैं।

प्रस्तावना

श्वेताम्बर जैन संप्रदाय के जितने गच्छों का इतिहास उपलब्ध होता है उन सब में खरतर गच्छ का इतिहास विशेष विस्तृत और विविध साधन संपन्न है। खरतर गच्छ की पट्टावलियां संख्या में भी खूब अच्छी मिलती हैं और रचनायें भी कई एक यथेष्ट पुरातन। पट्टावलियों के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और देश्यभाषा में छोटी-बड़ी गुर्वावलियां, स्तुतियां और रास भास आदि कृतियां भी अनेक उपलब्ध होती हैं। ग्रन्थ-प्रशस्तियां, पुस्तक प्रशस्तियां, मन्दिर-प्रशस्तियां और मूर्तियां तथा पादुकाओं पर उत्कीर्ण छोटे-बड़े लेख भी सैकड़ों की संख्या में विद्यमान हैं। इन सब साधनोंका व्यवस्थित संग्रह और संकलन किया जाय और उन सब को अच्छे ढङ्ग से संपादित और प्रकाशित किया जाय तो उससे खरतर गच्छ के गौरव का और विस्तार का बड़ा मनोरंजक, प्रभावोत्पादक और वास्तविक इतिहास विद्वानों के सन्मुख उपस्थित किया जा सकता है।

हमें यह देखकर बड़ा आनन्द होता है कि इस गच्छ के एक श्रद्धाशील बन्धु-युगल-भाई श्री अगरचन्दजी नाहटा और श्री भँवरलालजी नाहटा-इस दिशामें खूब प्रशंसनीय प्रयत्न कर

रहे हैं और अपने पूर्वाचार्यों और पूर्वजनोंकी कीर्ति को प्रकाश में लाने का पुण्योपार्जन कर रहे हैं।

इससे पहले श्री जिनचन्द्रसूरि चरित्र और ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह नामक दो पुस्तकें इन्होंने अच्छे ढङ्गसे सम्पादित कर प्रकाशित की हैं और अब यह दादा श्री जिनकुशलसूरिका चरित्र प्रकट कर रहे हैं। इसके सिवा ये दोनों बन्धु अन्यान्य पत्र—पत्रिकाएं आदि में इतिहास विषयक सामग्री को लक्ष्यकर छोटे-बड़े अनेक लेख, निबन्ध आदि लिख-लिख कर इस विषय की खोज के प्रेमियों को कितनी ही नई बातें ज्ञात कराने का अभिनन्दनीय उद्यम करते हैं। मारवाड़ के इधर उधर के अनेक स्थानों में भ्रमण कर पुराने ग्रन्थ पत्र आदि सामग्री का संग्रह भी इन्होंने अपने स्थान (बीकानेर) में अच्छा कर रखा है और करते जा रहे हैं। अपने व्यवसायी जीवन के निमित्त, बंगाल और आसाम जैसे दूर के देशों में, व्यापारिक कारोबार में व्यस्त रहते हुए भी ये बन्धु इस प्रकार निरन्तर साहित्य सेवा में अपना योग्य देते रहते हैं और यथाशक्ति तन, मन और धन का सदुपयोग करते रहते हैं—जो अन्य जैन-बन्धुओं के लिये अवश्य अनुकरणीय और अनुमोदनीय है।

श्री जिनकुशलसूरि का यह चरित्र प्रायः ऐतिहासिक तथ्य-परिपूर्ण है। विशुद्ध इतिहास में चमत्कारिक और असानुषिक घटनाओं की कोई प्रतिष्ठा नहीं है। लेकिन हमारे देश के इतिहासका उपादान प्रायः चमत्कारमय वर्णन ही से परिपूर्ण होता

है। हमारे मानसिक और बौद्धिक संस्कार परापूर्व से इस चमत्कारमय वातावरण से इतने ओत-प्रोत हो रहे हैं कि यदि हमारे किसी पूर्वज या महापुरुष के जीवन वृतांत में कोई चमत्कारिक घटना का निर्देश जो हम न देख सकें और न पा सकें तो हमें इस व्यक्ति के वैशिष्ट्य में कोई विशेष श्रद्धा ही नहीं उत्पन्न हो सकती। इसलिये,हमारे पूर्वजों के इतिहासके आलेखन में हमें पद-पद पर इस चमत्कार अलङ्कार का दर्शन होता रहता है और बुद्धि और विचारशक्तिको ग्राह्य न होनेपर भी श्रद्धा और संस्कार के कारण हमें उसमें भक्ति रखनेकी भावना हो आती है। जिनकुशलसूरि के इस चरित्र में ऐसी कोई खास चमत्कारिक घटना का निर्देश नजर नहीं आता और प्रायः जितना वर्णन है वह सब ही ऐतिहासिक वास्तविकता का विधायक है। चरित्र लेखकोंने 'स्वर्गवासके पश्चात्‌वाले' शीर्षक के नीचे जो थोड़ासा, इन आचार्य के प्रभाव का महत्व बतलाने के लिए कुछ चमत्कारिक वृतांत का उल्लेख किया है उसका सम्बन्ध चरित्रनायक के निज के मानवी जीवनके साथ कुछ भी नहीं है। वे सब उनके मृत्युके बादकी बातें है जो उनके भक्तगणों द्वारा प्रस्तुत की गई है। जिनकुशलसूरि के जीवन के साथ सम्बन्ध रखनेवाली सभी व्यक्तियों औरप्रवृत्तियां, प्रायः उनके समकालीन उल्लेखों और प्रमाणों से सिद्ध और समर्थित होती हैं। इसलिए यह चरित्र एक प्रकार से शुद्ध इतिहास सिद्ध जीवन वर्णन (Pure Historical Biography) ही है।

इसमें कोई शक नहीं है कि श्री जिनकुशलसूरि बड़े चरित्र-वान् और प्रभावशाली पुरुष थे। ऐसा न होता तो खरतर गच्छानुयायी वर्ग में, आज सैकड़ों वर्षों से इनके प्रति जो बड़ी उत्कट भक्ति और श्रद्धा चली आ रही है वह न होती। इस पुस्तक के परिशिष्ट (ख) में जो एक कृति दी हुई है उसके वर्णन से ज्ञात होता है कि मारवाड़, मेवाड़, मालवा, गुजरात, काठियावाड़, कच्छ, सिंध, पंजाब और दिल्ली आदि प्रदेशों के कई स्थानों में—जिनकी संख्या १०८ जितनी होती है—इनके स्तूप बने हुए हैं और वहां पर भक्तगण उनकी चरण स्थापनाकी बड़ी श्रद्धापूर्वक पूजा-अर्चा करते रहते हैं। इन भक्तजनों की यह दृढ़ आशा है कि इनकी उपासना से उनके मनोवांछित की सिद्धी होती है। ऐसी श्रद्धा और तदनुसार सिद्धी का प्राप्त होना, इनके उत्कट चारित्र का ज्ञापक है।

चारित्रबल के साथ इनमें ज्ञानबल भी वैसेही उच्चकोटिका था, यह बात इनकी की हुई ग्रन्थ-रचना के देखनेसे सिद्ध होती है। छोटी बड़ी कृतियां जो कुछ इनकी उपलब्ध होती हैं उनसे ज्ञात होता है कि संस्कृत प्राकृत और प्रचलित देश भाषा पर इनका पूरा प्रभुत्व था। कवित्व शक्ति भी इनमें बहुत उत्तम प्रकार की थी। प्रस्तुत चरित्र-लेखकों ने इनके न्याय, व्याकरण, साहित्य, अलङ्कार, नाटक, ज्योतिष, मंत्र-तंत्र आदि अनेक विद्याओं में सिद्धहस्त होने का जो उल्लेख किया है उसमें चाहे अत्युक्तिका अंश भलेही हो लेकिन असंभव कुछ नहीं है।

इनकी ग्रन्थ-रचना में, वर्तमान में जो मुख्य कृति उपलब्ध है वह चैत्यवन्दना-कुलक-वृत्ति है। इस वृत्ति का स्वाध्याय करने का हमें प्रसंग मिला और उसके अवलोकन से हमें ज्ञात हुआ कि इनमें कवित्व और वक्तृत्व दोनों प्रकार की शक्तियां उत्तम प्रकार में विद्यमान होंगी। इस वृत्ति में प्रसंगवशात् जो कितनीक कथायें लिखी गई है, उनमें इनके पाण्डित्य और प्राज्ञता की सूचक बड़ी अच्छी-अच्छी चमत्कारिक पंक्तियां स्थान-स्थान पर उपलब्ध होती हैं। शृगाल और सर्प पुच्छ के दृष्टान्त जैसे वालप्रिय लौकिक आभाणकों को भी इन्होंने बड़े मनोरम ढङ्ग से सुन्दर पद्यों और आलंकारिक वाक्यों द्वारा गुम्फित किये हैं। इच्छा तो होती है कि, यहांपर कुछ विस्तार के साथ, इस ग्रन्थ में से, इनके ऐसे विशिष्ट पाण्डित्य निर्देशक कुछ अवतरणादि उद्धृत करें, लेकिन इस छोटी सी पुस्तिका की बड़ी भूमिका लिख कर, इसके कलेवर को वढ़ाना, छोटे सिरपर वड़ी पगडी रखना जैसा असंगत मालूम होने के भय से, इस इच्छा का संवरण करना ही उचित मालूम दे रहा है।

इस ग्रन्थ में सूरिजी ने सिद्धसेन दिवाकर और परमार्हत महाकवि धनपाल की कथायें लिखी हैं जिनमें इनकी कुछ ऐतिहासिक प्रियता भी दृष्टिगोचर होती है। जन समाज में परस्पर एकता और समानता का व्यवहार रहना चाहिए इस वात का भी इन्होंने स्पष्ट विधान किया है—जो वर्तमान में जैन-समाज को सबसे अधिक मनन और अनुसरण करने

योग्य है। इस विषय में साधर्मिकवात्सल्य वाले प्रकरण में इन्होंने कहा है कि—जैनधर्म का अनुवर्तन करने वाले सब मनुष्यों को परस्पर सम्पूर्ण बन्धुभाव और समान व्यवहार वर्तना चाहिये—चाहे फिर कोई किसी भी देश और किसी भी जाति में क्यों न उत्पन्न हुए हों। जो कोई मनुष्य सिर्फ नमस्कार मन्त्र मात्र का स्मरण करता है वह भी जैन है और अन्य जैनों का परम बन्धु है और इसीलिये उसके साथ किसी भी प्रकार का भेद भाव न रखना चाहिये और किसी प्रकार का वैर विरोध न करना चाहिए। धार्मिक एकता की दृष्टि से ये विचार कितने उदार और अनुकरणीय हैं † जिनकुशलसूरि की

† साधर्मिक वात्सल्य के विषय में जिनकुशलसूरि का यह विधान इस प्रकार है :—

तथा—स्वपुत्र-मित्र-कलत्रादिबन्धुभ्योऽपि साधर्मिकेषु स्नेहबन्धः प्रचुरतरो विधेयः।

यत् उक्तं—साहम्मियाओ अहिओ बंधुसुयाईसु जाण अणुराओ।
तेसिं न हु सम्मतं विन्नेयं समयनीईए॥

तथा—जे भिन्नभिन्नजातयो भिन्नदेश-सम्भूतयो भवन्ति ते जिनधर्मं प्रपन्नाः परस्परं बान्धवा एव। तथा चोक्तम्—

अन्नन्न देसजाया अन्नन्नदेस वड्ढिय सरीरा।
जिन सासणं पवन्ना सव्वे ते बंधवा भणिया॥

तम्हा सव्वप्पयत्तेण जो नम्मुक्कार धारओ।
सावगो सो वि दट्ठव्वो जहा परम बंधवो॥

देखो—चैत्यवन्दना कुलक वृत्ति, पृष्ठ ३२३-४

चरण-पूजा करने वाले भक्तजन यदि उनके इस कथन का बुद्धि-पूर्वक अनुपालन करें तो, गुरुपूजा का सबसे उत्तम फल प्राप्त कर सकते हैं और कम-से-कम अपने गच्छ का तो पूरा गौरव बढ़ा सकते हैं।

अन्त में साहित्य-प्रिय भाई श्री भँवरलालजी नाहटा ने इस पुस्तिका के प्रारम्भ में ये ये दो-चार पंक्तियां लिख देने के लिए साग्रह अनुरोध करके, अपने पूर्वाचार्यों की स्तुति-पूजा करने में मुझे भी सहयोग देने का जो अवसर दिया, तदर्थ मैं इनका कृतज्ञ हूं और आशा करता हूं कि इन नाहटा-बन्धुओं की तरह अन्य जैन-बन्धु भी जैन साहित्य और इतिहास को प्रकाश में लाने के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करें करावें। इत्यलम्

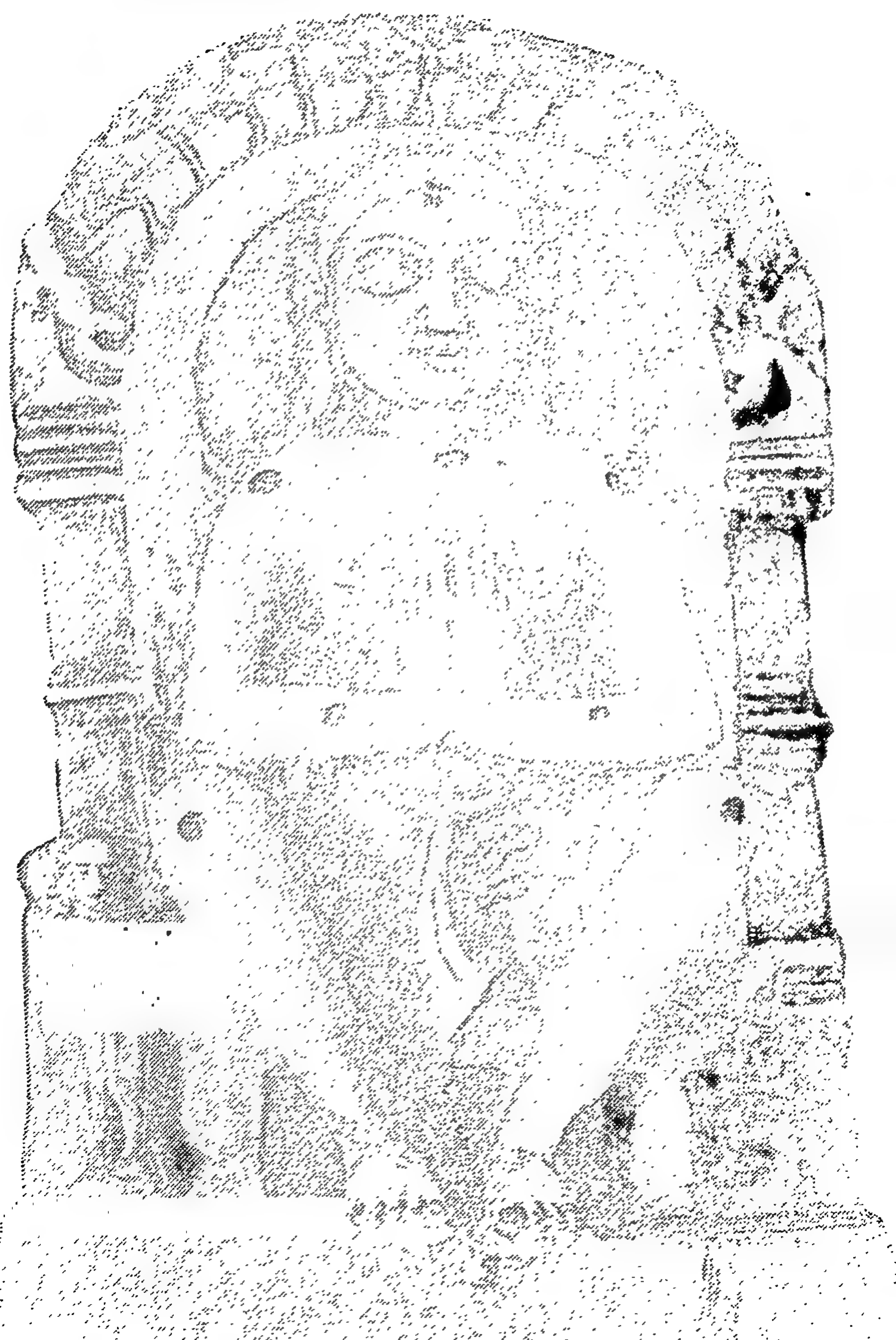
वैशाखी पूर्णिमा १९९६
अनेकान्त विहार
अहमदाबाद

जिनविजय

युगवर कमलेशा सूरि भाग्यालिकोशा
भव जलधि तरण्डा वादिवाद प्रचण्डाः
जिनकुशल यतीशा रूप लक्ष्म्या रतीशाः
त्रिभुवन कमलंवैः पातु संसेव्यमाना ॥११॥

संं० १४०५ लि० पट्टावली से।

दादा श्री जिनकुशलसूरि :—



दादा श्री जिनकुशलसूरि

पहला प्रकरण

जन्म और दीक्षा

प्रगट प्रभावी, कामित कल्पतरु, भक्तवत्सल परम पितामह श्री जिनकुशलसूरिजी जैन शासन के सुप्रसिद्ध महापुरुष थे। जैन समाज का बच्चा-बच्चा उन्हें दादाजी के नाम से पहिचानता है। भारत के कोने कोने में आपके स्मृति-मन्दिर, मूर्तियां और पादुकाएं प्रतिष्ठित हैं। आपके गुण वर्णनात्मक सैकड़ों स्तवन-स्तोत्र रचकर अनेक सुकवियों ने भक्ति कुसुमांजलि समर्पण की है। ऐसे शासन प्रभावक गुरुदेव का पुनीत जीवन आलोकित करने का यह लघु प्रयास किया जा रहा है।

जन्म

मरुस्थल देश के सामियाणा (गढ सिवाना) ग्राम में छाजहड गोत्रीय मं० देवराज के पुत्र मन्त्रिराज श्री जैसल

१—इस गोत्र वाले साह उद्धरण श्री जिनपतिसूरिजी के समय में खरतर गच्छानुयायी हो गये थे। इस विषय में हमारे संग्रह के एक प्राचीन पत्र में मनोरंजक ऐतिहासिक वर्णन है अतः उस पत्र की

(जेल्हागर) निवास करते थे। उनकी धर्मपत्नी जयतश्री की रत्नगर्भा कुक्षि से सं० १३३७ में आपका जन्म हुआ था। आप का जन्म नाम करमण रखा गया। शुक्लपक्षके चन्द्र की भांति अहर्निश बढ़ते हुए स्वजनों के चित्त को आह्लादित करने लगे।

जब आप दस वर्ष के हुए तब खरतर गच्छ के प्रभावक आचार्य श्री जिनप्रबोधसूरिजी के पट्टधर कलिकाल-केवली श्री जिनचन्द्रसूरिजी समियाणा पधारे। गुरुदेव का अमृततुल्य

नकल परिशिष्ट में दी गई है। श्रीजिनकुशलसूरिजी और उनके गुरु श्री जिनचन्द्रसूरिजी एवँ श्रीजिनपद्मसूरिजी, श्रीजिनभद्रसूरिजी आदि इसी वंश के थे। खरतर गच्छ की वेगड़ शाखा में तो अधिकांश आचार्य इसी वंश के हुए हैं। अब भी छाजहड़ गोत्रवाले खरतर गच्छानुयायी हैं। इस गोत्र की एक ऐतिहासिक प्रशस्ति अहमदाबाद से प्रकाशित "जैन प्रशस्ति संग्रह" में प्रकाशित हुई हैं। श्री नाहरजी के 'जैन लेख संग्रह' के लेखांक २५०५ में इस गोत्र के सम्बन्धी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलतीहै।

१—गृहस्थ अवस्था में आप श्रीजिनकुशलसूरिजी के पितृव्य होते थे। इनके सम्बन्ध में सूरिजी (चरित्रनायक) ने प्राकृतमें 'चतुःसप्ततिका' ग्रन्थ रचा है जिसे इसी ग्रन्थ के परिशिष्ट में प्रकाशित किया जाता है। उसका ऐतिहासिकसार हमारे सम्पादित "ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह" के सार विभाग पृ० ११ में प्रकाशित हो चुका है। गुर्वावली में इनका चरित्र बहुत विस्तार से मिलता है। जेसलमेर नरेश कर्णदेव, जेत्रसिंह,

धर्मोपदेश श्रवण कर करमण कुमार संसारसे विरक्त हो गये। उन्होंने उसी क्षण अपना समग्र जीवन संयमाराधन में व्यतीत करना निश्चित कर लिया। घर आकर मातेश्वरी जयतश्री को सविनय विज्ञप्ति की "गुरुदेव के सदुपदेश से प्रतिबोध पाकर संयम मार्ग ग्रहण करने की मेरी उत्कट अभिलाषा है अतः माता जी! कृपा करके मुझे अनुमति प्रदान करें!" लाडले पुत्र के इन वचनों ने माता के हृदय को मार्मिक आघात पहुंचाया। वे कहने लगीं "वत्स! तुम्हारे वचन बड़े प्रिय और मनोहर हैं, पर मेरे एकमात्र तुम ही आधार हो! तुम्हारे बिना मेरा जीवन असार है; फिर तुम तो अभी निरे बालक हो, चारित्र पालन करना तुम्हारे ऐसे सुकुमार के लिए अति कठिन है, संयम मार्ग में पद-पद पर अनेकों विघ्न, परिसह आते हैं। अतएव अभी इस विचार को छोड़कर सुख से रहो! तुम से मुझे बड़ी बड़ी आशाएं हैं। किसी सुलक्षणा कन्या को पुत्रवधू के रूप में देखने का मेरा भव्य मनोरथ पूर्ण करो।"

माता के मोहयुक्त वचनों को श्रवण कर कर्मणकुमार ने अपना दृढ़ निश्चय इन शब्दों में प्रकट कर दिया "इस संसारमें कोई किसी का नहीं है, अनेक बार इन कुटुम्बिक सम्बन्धों को प्राप्त कर आत्मोन्नति के स्थान पर संसार वृद्धि ही की है अतः

समियाणाके समरसिंह, शीतलदेव आदि आपके भक्त थे। आपने सम्राट कुतुबुद्दीन को अपने सद्गुणों से चमत्कृत किया था। पट्टावलियों में इनका "कलिकाल केवली" विरुद लिखा है।

अब इन सम्बन्धों से सरा, मैं भव भव में एकान्त हितकारी भागवती प्रवृज्या को स्वीकार कर आत्म-कल्याण करूंगा। जो समय जा रहा है—आने का नहीं, आयु प्रतिक्षण घट रही है। कृपा कर मुझे शीघ्र अनुमति दीजिये!" पुत्र के निश्चयात्मक वचनों से विवश होकर माता को अनुमति देनी पड़ी।

दीक्षा

शुभ मुहुर्त में सं० १३४७ फाल्गुन शुक्ला ८ के दिन श्री जिनचन्द्रसूरिजी के करकमलों से समारोह पूर्वक आपकी दीक्षा सम्पन्न हुई। आपका दीक्षा नाम कुशलकीर्ति रखा गया। इस समय देववल्लभ, चारित्रतिलक और रत्नश्री साध्वी की दीक्षा एवं मालारोपण आदि हुए। साथ साथ चौहान श्री सोमेश्वर महाराज द्वारा किए हुए विस्तृत प्रवेश-महोत्सव के सहित श्री शांतिनाथ स्वामी की स्थापना भी सा० वाहड़, भां० भीमा, भां, जगसिंह, भां० खेतसिंह कारित मन्दिर में हुई।

विद्याध्ययन

उस समय उपाध्याय विवेकसमुद्र[1] वयोवृद्ध गीतार्थ और

१—आपने सं० १३०४ मिती वैशाख शुक्ला १४ को श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराज के कर कमलों से दीक्षा ग्रहण की थी। सं० १३२३ में द्वि० ज्येष्ठ शुक्ला १० को जेसलमेर में आपको श्री जिनेश्वरसूरिजी ने वाचनाचार्य पद प्रदान किया। सं० १३४२ मिती वैशाख शुक्ला १० को जालोर के श्री महावीर चैत्य में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आपश्री को

प्रकाण्ड विद्वान थे। चरित्रनायकके गुरु कलिकालकेवली, श्रीजि-
चन्द्रसूरिजी, राजेन्द्रचन्द्रसूरिजी[1] दिवाकराचार्य[2] राजशेखराचार्य[3]

उपाध्याय पद से अलंकृत किया। सं० १३७९ मिती ज्येठ कृष्ण १४ को पाटण में अनशन करके मिती ज्येठ शुक्ला २ को स्वर्गवासी हुए। जिसका वर्णन दूसरे प्रकरण में किया गया है। इनके रचित सम्यक्त्व पर १ नरवर्म चरित्र की १३८ पत्र की प्राचीन प्रति श्री विजयधर्म-सूरि ज्ञानमन्दिर, आगरे में विद्यमान है, २ पुण्यसार कथानक सं० १३३४ जेसलमेर में रचित उपलब्ध है।

१—श्रीजिनचन्द्रसूरि ने सं०१३४७ ज्येठ कृष्णा ७ को भीमपल्ली में आपको दीक्षा दी थी। उपाध्याय श्री विवेकससुद्रजा के पास आपने व्याकरण तर्क, साहित्य, अलङ्कार, ज्योतिष व स्व-पर सिद्धान्तादि का अध्ययन किया था। सं० १३७३ में जब श्री जिनचन्द्रसूरिजी देव-राजपुर थे, वहा से सेठ वीसल और मोहणसिह को भेजकर पाटण से वहां बुलाया तब उपाध्यायजी ने पुण्यकीर्ति को साथ देकर आपके पास भेजे। सूरिजी ने उन्हें मिती मार्गशीर्ष कृ० ६ को आचार्यपद दिया।

२—इन्हें सं० १३३१ फाल्गुन शुक्ला ५ को श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने जालौर में दीक्षा दी, इनका दीक्षानाम स्थिरकीर्ति रखा। सं १३४४ मार्गशीर्ष शुक्ला १०को जालोर के श्रीमहावीरस्वामी के मन्दिर में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आचार्य पद देकर इन्हें दिवाकराचार्य नामसे प्रसिद्ध किये। सं० १३६० आषाढ़ कृ० ४ को इन्होंने चतुर्विध संघ सह आबू यात्रा की, जिसका लुणगवसही में लेख है।

३—इन्होंने सं० १३१४ में चैत्र शुक्ला १४ को श्री जिनेश्वरसरि

वा० राजदर्शनगणि,[1] वा० सर्वराज गणि[2] आदि अनेक सुप्रसिद्ध विद्वानों ने आप ही के पास तीन वार हेमव्याकरण बृहद्वृत्ति, ३६००० श्लोक परिमाण वाले श्री न्यायमहातर्कलक्षण, साहित्य, अलंकार, ज्योतिष और स्वपरदर्शनादि के ग्रन्थ पढ़े थे, हमारे चरित्रनायक, कुशलकीर्त्तिजी का अध्ययन भी आप ही के पास हुआ। इस बात को आपने स्वयं 'चैत्यवन्दन कुलकवृत्ति' की अन्त्य प्रशस्ति में इन शब्दों में लिखा है—

तन्मौक्तिक स्तवक सेव्य पदोऽनुवेल
मस्ताघ संवर धरः कुपथ प्रमाथी
विद्यागुरुर्मम विवेकसमुद्र नामो
पाध्याय इद्धतर रत्ननिधिर्बभूव ॥११॥

से चारित्र ग्रहण किया। सं० १३४१ वैशाख शु० ३ को श्रीजिनप्रबोध सूरिजी ने जालोर में वाचक पद दिया। सं० १३६४ वैशाख कृ० १३ को जालोर में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने आचार्यपद से विभूषित किया। इन्होंने राजगृह आदि अनेक तीर्थों की यात्रा की थी।

१—ये पालनपुर में सं० १३१५ आषाढ़ शु० १० को श्रीजिनेश्वर सूरिजी के कर-कमलों से दीक्षित हुए। सं० १३४६ वैशाख कृ० १ को जालोर में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने वाचनाचार्यपद से अलंकृत किया।

२—सं०१३२२ माघ शुक्ला१४को विक्रमपुर में इनकी दीक्षा हुई। सं० १३४२ वैशाख शु० १० को जालोर में श्री महावीरभगवान

वाचनाचार्य पद

सं० १३७५ में फलोधी पार्श्वनाथजी की द्वितीय वार यात्रा करके श्री जिनचन्द्रसूरिजी नागपुर (नागौर) पधारे। मिती माघ शुक्ला १२ को मन्त्रीदलीय[1] ठक्कुर विजयसिंह ठ० सेढू सा० रुदा आदि योगिनीपुर (दिल्ली) के संघ प्रमुख श्रावक और डालामऊ के मन्त्रीदलीय ठ० अचल आदि समुदाय, कन्यानयन आसिका, नरभट आदि बहुत से स्थानों के रहने वाले समस्त वागड़ देश के संघ, मं० मूधराज आदि कोशवाणा के समुदाय, एवं समस्त सपादलक्ष देश का समुदाय, जावालिपुर के साह सुभट आदि, शम्यानयन आदि मारवाड़ के समुदाय के एकत्र होने पर एक विराट् महोत्सव प्रारम्भ हुआ। स्थान स्थान पर

के मन्दिर में श्री जिनकुशलसूरिजी ने वाचकपद दिया। इन्होंने गणधर-सार्वशतक लघुवृत्ति की रचना की।

४—युगप्रधानाचार्य गुर्वावली के अनुसार यहां के विधिचैत्य में सं० १२३४ में श्री जिनपतिसूरिजी ने श्री पार्श्वनाथ प्रभु की स्थापना की। इसके लिये देखें 'सत्य जैनप्रकाश' पत्र में हमारा लेख।

१— इस जाति के सम्बन्ध में देखें हमारा "महत्तियाण जाति" लेख प्र० ओसवाल नवयुवक वर्ष ७ अंक ६

२—इनको सं० १३४० ज्येष्ठ कृष्णा ४ को जालोर में श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने दीक्षा दी थी।

अन्नसत्र खोले गए, जिन मन्दिरों में नृत्य, पूजन, स्वधर्मीवात्सल्यादि हुए। वहुतों ने व्रतग्रहण, मालारोपण आदि के लिए नन्दी-महोत्सव किया उस समय सोमचन्द्र साधु एवं शीलसमृद्धि दुर्लभसमृद्धि, भुवनसमृद्धि साध्वी को दीक्षा दी गई। पं० जगच्चन्द्र[१] को वाचनाचार्य पद दिया गया। धर्ममाला[३] व पुन्यसुन्दरी[४] गणिनी को प्रवर्त्तिनी पद दिया गया।

हमारे चरित्रनायक कुशलकीर्तिजी इस समय स्वपर समस्त शास्त्रों के पारङ्गत विद्वान हो चुके थे। न्याय, व्याकरणादि में आपकी असाधारण गति थी। अतएव सर्वथा योग्य जानकर इसी उत्सव में श्री जिनचन्द्रसूरिजी ने इन्हें वाचनाचार्य पद से विभूषित किया।

इस महोत्सव के अनन्तर कलिकालकेवली श्री जिनचन्द्र सूरिजीने ठक्कुर विजयसिंह, ठ०सेढ्ढ, ठ०अचलसिंह आदि वृहत् संघ के साथ फलौदी पधारकर तृतीयवार श्री पार्श्वनाथ भगवान् की यात्रा की। संघ के पधारने से वहां के भण्डार में हजारों रुपयोंकी आमदनी हुई। इसके पश्चात् सं०१३७५ वैशाख कृ० ८ को पूज्यश्री नागौर पधारे। महत्तियाण ठकुर अचलसिंह ने सम्राट् कुतुबुद्दीन से निर्विरोध तीर्थ यात्रा का फरमान

३—सं० १३३३ में ज्येठ कृष्णा ७ के दिन शत्रुञ्जय में श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने इन्हें दीक्षा दी।

४—सं०१३४१ ज्येष्ठ कृ०४ को श्रीजिनप्रबोधसूरिजी ने आपश्री को जेसलमेर में दीक्षा दी।

प्राप्त कर हस्तिनापुर और मथुरा के लिए एक विराट् संघ निकाला। हस्तिनापुर की सकुशल यात्रा करने के पश्चात् सूरि महाराज कुतुबुद्दीन सम्राट् को चमत्कृत कर मंडासराय ठहरे। यहां से मथुरा की यात्राकर पुनः दिल्ली पधारे और मंडासराय में चातुर्मास किया।

दूसरा प्रकरण

आचार्यपद व प्रतिष्ठाएँ

श्री जिनचन्द्रसूरिजी के खण्डासराय चातुर्मास के अनन्तर कम्प रोग उत्पन्न हुआ। अपने ज्ञान ध्यान के बल से अपना आयुशेष निकट जानकर स्वहस्त दीक्षित लक्षण, तर्क, साहित्य, अलंकार, ज्योतिष, एवं स्वपरदर्शन के प्रकाण्ड विद्वान वाचनाचार्य्य कुशलकीर्ति गणि को अपने पद योग्य समझा। सूरिजी ने इनके पदस्थापन व नामकरण आदि की सर्व शिक्षा समन्वित एक पत्र श्रीराजेन्द्रचन्द्राचार्यजी के प्रति लिखकर सुश्रावक ठक्कुर विजयसिंह को सौंप दिया। सूरिजी ने राणा मालदेव चौहान के अनुरोधपूर्ण आमन्त्रणके कारण वहाँ से मेड़ता की ओर विहार कर दिया। मार्ग में एक मास पर्यन्त कन्यानयन रहे, वहां श्वासादि की व्याधि बढ़ जाने से चतुर्विध संघसे क्षमतक्षामणा की। एवं अपने विश्वासपात्र प्रवर्त्तक जयवल्लभ[1] गणि से परामर्श कर राजेन्द्रचन्द्राचार्य के प्रति पद योग्य सर्व शिक्षा लिखकर एक पत्र उन्हें भी दे दिया। कुछ

१—इनकी दीक्षा सं० १३२२ माघ शुक्ला १४ के दिन विक्रमपुर में श्री जिनप्रबोधसूरिजी के कर कमलों से हुई।

स्वस्थ होने पर राणा मालदेव की अभ्यर्थना से वहां से मेड़ता पधारे, वहां २४ दिन ठहरे। वहां से विहार कर कोशवाणा पधारे। यहां सं० १३७६ आषाढ़ सुदि ६ को ड्योढ़ प्रहर रात्रि वीतने पर अनशन आराधनापूर्वक स्वर्ग सिधारे। श्री संघ ने वहां आपश्री का सुन्दर स्तूप-निवेश किया।

चातुर्मास समाप्त होने पर जयवल्लभ गणि पूज्यश्री के पत्र को लेकर श्री राजेन्द्रचन्द्राचार्य के पास भीमपल्ली[1] आए। पत्र के आशय को विदित कर जयवल्लभ गणि आदि साधुओं के साथ श्री राजेंद्रचन्द्राचार्यजी पाटण पधारे। पाटण में उस समय महादुर्भिक्ष होने पर भी अपने ज्ञानबल से चतुर्विध संघ का कुशल ज्ञात कर पूज्यश्री के आज्ञा के प्रतिपालनार्थ आचार्यश्री ने सं० १३७७ के ज्येष्ठ कृष्ण ११ कुम्भ लग्न में सूरिपद स्थापना का मुहुर्त निर्धारित किया।

यह बात जानकर सुश्रावक जाल्हणके पुत्ररत्न सेठतेजपाल[2]

१—यह ग्राम पालनपुर एजेंसी के डीसा ग्राम से ८ कोश पश्चिम है। अभी भीलड़ी नाम से प्रसिद्ध है। विशेष जानने के लिए जैनयुग सं० १९८५-८६ भाद्रव-कार्तिक अंक में मुनिराज श्री कल्याणविजयजी का "भीमपल्ली अने जैन तीर्थ रामसैन्य" लेख।

२—इनके पिता श्री जाल्हण श्रीजिनप्रबोधसूरिजी के छोटे भाई थे, इन्हीं के वंश में मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र बच्छावत हुए है। 'कर्मचन्द्रवंश प्रबन्ध वृत्ति और एक पट्टावली में इनके विषय में अनेक नई नई बातें मिलती हैं।

अपने भ्राता रुद्रपाल के साथ पदस्थापना महोत्सव अपनी ओर से करने के लिए उत्कण्ठित हो उठे। आचार्य श्री की आज्ञा प्राप्त कर तेजपाल ने योगिनीपुर, उच्चनगर, देवगिरि, चित्तौड़, खम्भात, आदि चारों दिशाओं के संघ को कुंकुमपत्रिकाएँ लिखकर पत्रवाहकों के साथ भेजी। पदाभिषेक का संवाद पाकर चारों ओर से संघ आकर पाटण में एकत्र होने लगा। इसी समय ठक्कुर विजयसिंह भी पूज्यश्री के दिए हुए शिक्षापत्र और गोलक के साथ योगिनीपुर से पाटण आये।

चारों ओर के संघ को एकत्र हुआ देख कर श्री राजेन्द्र-चन्द्राचार्यजी ने महोपाध्याय विवेकसमुद्र, प्रवर्त्तक जयवल्लभ, हेमसेन गणि, वाचनाचार्य हेमभूषण [1], आदि ३३ साधु, जयर्द्धि [2] महत्तरा, प्रवर्तिनी वुद्धिसमृद्धि गणिनी, प्र० प्रियदर्शना गणिनी आदि २३ साध्वियां एवं सर्व संघके समक्ष प्र० जयवल्लभगणि और

१—इनकी दीक्षा सं० १३२४ मार्गशीर्ष द्वितीया शनिवार को जालोर में श्री जिनेश्वरसूरिजी के हाथ से हुई। सं० १३६१ द्वितीय वैशाख कृ० १० के दिन समियाणा में श्रीजिनचन्द्रसूरिजी ने वाचकपद दिया। श्री जिनकुशलसूरिजी ने सं० १३७८ माघशुक्ला ३ को भीम-पल्ली में इन्हें उपाध्याय पद से अलंकृत किया।

२—ये ठ०हांसिलपुत्र देहड़ाके छोटे भाई ठ०थिरदेव की पुत्री थी। सं०१३४२ मिती वैशाख शु० १० को जालोर के महावीर चैत्य में श्री

ठक्कुर विजयसिंह द्वारा प्राप्त स्वर्गीय पूज्यश्री के दोनों आज्ञा पत्र पढ़कर सुनाये। उन्हें सुनकर चतुर्विध संघ के हर्ष का पारावार न रहा।

आचार्यश्री ने पूज्यश्री के आदेशानुसार वाचनाचार्य श्री कुशलकीर्त्ति गणि को श्री शांतिनाथ स्वामी के मन्दिर में संघ के समक्ष महान्‌समारोह के साथ सूरि पद पर स्थापन किया। पूज्यश्री की आज्ञानुसार उनका नाम "श्रीजिनकुशलसूरि" रखा। उस समय का दृश्य अत्यन्त मनोहर और वर्णनातीत था, सारा नगर ध्वजा पताकाओं, तोरणों से सजाया गया, नाना प्रकार के वाजित्रों की ध्वनि से गगनमंडल गूंज उठा। भाट व बन्दीगण उच्च स्वर से विरुद गाने लगे। चतुर्विध संघ की भीड़ से विशाल राजधानी भी संकुचित प्रतीत होने लगी। सेठ तेजपाल ने इस उत्सव पर अपने न्यायोपार्जित वित्त को खुले हाथ व्यय कर महाफल की प्राप्ति की। याचकों को मनोवांछित स्वर्ण, रौप्य, अश्व, वस्त्र, अन्न, आदि दिए गये। साधर्मीवात्सल्य प्रतिदिन होता था। उन्होंने अपने घर पर १०० आचार्य, ७००साधु, और २४०० साध्विओं को प्रतिलाभ कर वस्त्र पहिराये।

इस प्रसंग पर अन्य स्थानों से आये हुए सुश्रावकों ने भी

जिनचन्द्रसूरिजी से दीक्षा ली। दीक्षा नाम गुरू महाराज ने रत्नमञ्जरी रखा। सं०१३२८ श्रावण कृष्णा १ को लगभग भीमपल्ली में श्रीजिनचन्द्रसूरि ने इन्हें "महत्तरा" पद से भूषितकर जयर्द्धि नामसे प्रसिद्धकी।

धार्मिक कार्यों में विपुल वित्त व्यय कर यश एवं महद् पुण्य उपार्जन किया। जिनमें से भीमपल्ली के मुकुटमणि साधुराज सामल के पुत्र वीरदेव, श्रीश्रीमाल साह वीजल के पुत्ररत्न राजसिंह, राजमान्य मन्त्रिदलीय देवगुरु भक्त परमार्हत ठक्कुर विजयसिंह, ठ० जैत्रसिंह, ठ० कुमरसिंह, ठ० यवनपाल, ठ० पाल्हा आदि मन्त्रिदलीय समुदाय ने एवं साधुराज सुभट पुत्ररत्न सा० मोहन, मं० धन्नू, झांका आदि जालोर के श्रावक, सा० गुणधर आदि पत्तनीय, वीजापुरीय सा० तिहुणादि, आशापल्लीय ठ० पउमसिंह आदि, खंभात के गो० जैत्रसिंह आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

इस शुभ अवसर पर मालारोपण, नन्दी-महोत्सव आदि भी हुए। तथा श्रीशांतिनाथजी के मन्दिर में अठाई–महोत्सव किया गया।

इसी वर्ष में श्रीश्रीमाल देदा के पुत्र आना ने सूरिजी के उपदेश से 'नैषध काव्य' की ताड़पत्रीय प्रति खरीदकी, जिसकी प्रशस्ति "जेसलमेर भांडागारीय ग्रन्थानां सूची" पृ० १४ में छप चुकी है।

गच्छनायक पदप्राप्ति के अनन्तर सूरि महाराजने भीमपल्ली की ओर विहार किया। वहां पहुंचने पर वीरदेव श्रावक ने समारोह पूर्वक प्रवेशोत्सव किया। संघ का आग्रह और धर्मोन्नति का लाभ जानकर प्रथम चातुर्मास वहीं किया। सं० १३७८ माघ शुक्ला ३ को भीमपल्ली के सेठ वीरदेव आदि

समुदाय ने पाटण के संघ के साथ दीक्षा, मालारोपण नन्दी महोत्सव आदि किये। स्वधर्मीवात्सल्य, संघपूजा आदि नाना प्रकार से धर्म प्रभावना हुई। उस महोत्सव में श्रीराजेंद्र-चंद्राचार्यजी ने माला ग्रहण की। देवप्रभु मुनि को दीक्षा, हेम-भूषण वाचनाचार्य्य को 'उपाध्याय' पद व मुनिचन्द्र[1]-गणि को वाचनाचार्य पद दिया गया।

इसी वर्ष प्रतिज्ञा प्रतिपालने में प्रवीण पूज्यश्री ने अपने ज्ञान ध्यान के बल से विवेकसमुद्रोपाध्याय का आयु-शेष निकट जानकर भीमपल्ली से वापस पाटण पधारे। वहां मिती ज्येष्ठ कृष्णा १४ को स्वस्थ शरीर होनेपर भी विवेकसमुद्र उपाध्याय को चतुर्विध संघ के समक्ष मिथ्यादुष्कृत, क्षामणापूर्वक अनशन करा दिया। पंच परमेष्ठीमंत्र का ध्यान करते हुए आराधना पूर्वक ज्येष्ठ सुदि २ के दिन उपाध्यायजी स्वर्ग सिधारे। पाटण के संघ ने समारोह पूर्वक उनका स्वर्गोत्सव मनाया। अग्नि-संस्कार के स्थान पर संघ ने उनकी स्मृति में एक सुन्दर स्तूप बनवाया। सूरिजी ने उसे मिती आषाढ़ शुक्ला १३ के दिन वास-क्षेप देकर प्रतिष्ठित किया। संघ के आग्रह से सूरि महाराज का दूसरा चातुर्मास पाटण हुआ।

१—१३४७ मिती ज्येष्ठ कृष्णा ७ के दिन भीमपल्ली मेंश्री जिन-चन्द्रसूरिजी ने इन्हें दीक्षित किया। सं० १३६० आषाढ़ वदि ४ को इन्होंने दिवाकराचार्यजी आदि के साथ संघ सह आबूतीर्थ की यात्रा की जिसका लूणंगवसही के एक लेख में उल्लेख है।

सं० १३७६ मिती मार्गशीर्ष कृष्णा ५ को अनेक नगरों के महर्धिक श्रावकों की उपस्थिति में सेठ तेजपाल ने श्रीशांतिनाथ विधि-चैत्यमें जलयात्रा के साथ प्रतिष्ठामहोत्सव[1] मनाया। इस दस दिन व्यापी उत्सव में पत्तन के बड़े बड़े सेठ साहुकार और समस्त राज्याधिकारी वर्ग भी सम्मिलित हुए थे। सेठ तेजपाल ने अपने भ्राता रुद्रपाल सह स्वधर्मीवात्सल्य, संघ-पूजा और दीन दुखियों को दान देने में विपुल धन व्यय किया।

इसी दिन श्री शत्रुञ्जय पर्वतपर सेठ तेजपाल अदिपत्तनीय संघ की ओर से युगादिदेव प्रभु की मन्दिर की नींव डाली गई। इस कार्य में सा० नरसिंह के पुत्र खीवड़ का प्रयत्न विशेष उल्लेख योग्य था। श्रीजिनकुशलसूरिजी महाराज ने शिला, रत्न और

१—श्री शीतलनाथजी के मन्दिर (जेसलमेर) में स्थिरचन्द्र की बनवाई हुई श्री शांतिनाथजी की प्रतिमा सं० १३७६ मार्गशीर्ष वदी ५ की प्रतिष्ठित विद्यमान है। इसका लेख नाहरजी के "जैन लेख संग्रह" भाग ३ लेखांक २३८८ में छपा है।

२—यह प्रतिमा तीर्थाधिराज श्री शत्रुञ्जय पर खरतरवसही में विद्यमान है, परिकरमें इस मूर्ति के ऊपर जिनमूर्त्ति व उभयपार्श्व में १२ आचार्यों की मूर्तियां हैं। इसका लेख इस प्रकार है:—

सं० १३७६ वर्ष मार्ग वदि५ श्रीजिनेश्वरसूरि शिष्य श्रीजिनरत्न सूरि मूर्तिः श्रीजिनचन्द्रसूरि शिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठिता कारिता च खरतर सा० जाल्हण पुत्ररत्न तेजपाल रुद्रपाल श्रावकस्यु श्री समुदाय सहित।

धातु-पित्तलमय श्रीशान्तिनाथादि जिनेश्वरों की १५० प्रतिमाएँ स्वकीय मूल समवसरण द्वय, श्रीजिनचन्द्रसूरि, श्रीजिनरत्नसूरि[२] आदि के साथ नाना अधिष्ठायकों की मूर्तियां प्रतिष्ठित की।

इसी महोत्सवमें भीमपल्ली के सेठ वीरदेव, एवं श्रीपत्तनीय, भीमपल्लीय, आशापल्लीय श्रावकोंने संघपूजा, स्वधर्मीवात्सल्य किया। साधु सहजपाल के पुत्र स्थिरचंद्र, साह धीणा के पुत्र खेतसी आदि ने इन्द्रपदादि महोत्सव करके जैन शासन की अच्छी उन्नति की।

इसके पश्चात् बीजापुर के संघ की अभ्यर्थना से श्रावक समुदाय के साथ श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज वहां पधारे। संघ ने महोत्सव पूर्वक प्रवेश कराया। श्री वासुपूज्य भगवान के महातीर्थ की वन्दना की। फिर सूरि महाराज बीजापुर के श्रावकों के साथ त्रिशृङ्गम पधारे, साधुराज जेसल के पुत्र जगधर, सलखण ने असंख्य नर-नारी समूह के साथ चमत्कृति उत्पन्न करने वाला प्रवेशोत्सव किया। वहां से सूरिजी ने बीजापुर व त्रिशृङ्गम के संघ सहित पधार कर आरासण व तारंगा महातीर्थ की यात्रा की। मंत्रिदलीय ठक्कुर आसपाल के पुत्र जगतसिंह आदि ने स्वधर्मीवात्सल्य, संघपूजा अवारित सत्र, ध्वजारोपणादि बहुत से उत्सव किये। यात्रा से लौटते हुए सूरिजी ने तृतीय चातुर्मास भी पाटण में किया।

सं० १३८० के कार्तिक शुक्ला १४ को अपने पूर्वज मरुधर कल्पवृक्ष सेठ यशोधवल की भांति स्वधर्मीवात्सल्यादि

करने वाले सेठ तेजपाल ने अपने लघुभ्राता रुद्रपाल के साथ शत्रुंजय तीर्थाधिराज में नवीन नन्दि मन्दिर के मूलनायक योग्य ऋषभदेव भगवान की कर्पूर के समान उज्ज्वल सताइस अंगुल की प्रतिमा की अंजनशलाका सूरि महाराज के कर कमलों से करवाई इस प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसरपर अनेक स्थानों के संघ को निमंत्रित किया गया था। जलयात्रा, पूजादि उत्सव के साथ प्रतिष्ठा बड़े समारोह से हुई। साथ साथ जिनप्रबोधसूरि, जिनचन्द्रसूरि, कपर्दीयक्ष, क्षेत्रपाल, अम्बिकादि[1] की मूर्तियां, एवं भिन्न-भिन्न श्रावकोंकी बनवाई हुई बहुतसी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा और शत्रुञ्जय के मन्दिर के शिखर पर लगाने के लिये ध्वजदण्ड की प्रतिष्ठा करवाई। सा० धीणा के पुत्र खेतसिंह आदि श्रावकों ने इन्द्रपद युगादिदेव मुखोद्घाटन और मालाग्रहण आदि विविध धर्म-कार्यों में प्रचुर द्रव्य व्यय किया।

मिती मार्गशीर्ष कृष्णा ६ को मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण सामायक, परिग्रह प्रमाणादि व्रतग्रहण का नन्दी महोत्सव बड़े विस्तार से किया गया।

१—बम्बई में एक श्रावक के पास अभी यह प्रतिमा है, लेख की नकल इस प्रकार है:—

"संवत् १३८० श्री जिनकुशलसूरिभिः श्री अम्बिका प्रतिष्ठितं"

इसी सवंत् को प्रतिष्ठित श्री आदिनाथ चतुर्विंशति प्रतिमा अभी बीकानेर के श्रीचिन्तामणिजी के मन्दिर में मूलनायकजी रूप में विराजमान है। जिसका लेख हमारे 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' लेखांक २ में प्रकाशित है।

तीसरा प्रकरण

दिल्ली का यात्री संघ

इधर दिल्ली निवासी श्रीमाल ज्ञातीय सेठ हरु के पुत्र सुश्रावक रयपति—जिन्होंने इतःपूर्व फलवर्द्धि महातीर्थ की बड़े विस्तार से यात्रा की थी—ने सं० १३८० में दिल्लीपति सम्राट् गयासुद्दीन तुगलक के दरबार में प्रतिष्ठा प्राप्त अपने पुत्र धर्मसिंह के द्वारा प्रधानमन्त्री नेबसाहब की सहायता से एक शाही फरमान निकलवाया। उसका आशय यह था कि सेठ रयपतिका संघ तीर्थयात्रा के हेतु जहाँ जहाँ जाय सभी प्रान्तीय सरकारें इसे आवश्यक सहाय्य दें। संघकी यात्रा में किसी तरह की विघ्न बाधा न डाली जाय।

फरमान पत्र प्राप्तकर सेठ रयपति ने शत्रुञ्जय गिरनारादि महातीर्थों की यात्रा करनेके लिए पाटण में विराजित पूज्यश्री जिनकुशलसूरिजी के पास विज्ञप्ति लिखकर अपने आदमियों के साथ भेजी। सूरिजी ने अच्छी तरह से विचार कर तीर्थ-यात्रार्थ संघ निकालने का आदेश प्रदान किया। गुरुदेव का आशीर्वाद प्राप्तकर सेठ रयपति अति प्रसन्न हुए। अपने पुत्र महणसिंह, धर्मसिंह, शिवराज अभयचन्द्र व पौत्र भीष्म, भ्रातृ जवणपालादि परिवारके सहित गुरुमहाराज की उपदिष्ट विधि के अनुसार संघ की तैयारी करने लगे।

सेठ रयपति ने दिल्ली के प्रधान श्रावक मन्त्रिदलीय साधु जवनपाल, देवगुरुभक्त श्री श्रीमाली सा० भोजा, सा० छीतम, ठ० फेरू, एवं धामइना वास्तव्य सा० रूपा, बीजादि, लूणीवड़ी निवासी पंचौली सा० क्षेमंधर आदि दूर और निकटवर्ती संघ को एकत्र कर दिल्ली से प्रयाण करने का वडा भारी उत्सव मनाया। अपने पुत्ररत्न सा० धर्मसिंह के प्रयत्नसे राजमार्ग से होते हुए वारह प्रकार के वाजित्रों से शाही सेना के साथ प्रथम वैशाख कृष्णा ७ के दिन नवीन निर्मित देयालय को लेकर समस्त संघ ने दिल्ली से प्रस्थान किया। वह दृश्य वड़ा मनोहर था। सधवा स्त्रियां मंगल गीत गा रही थीं। रास खेले जा रहे थे दीन-दुःखियों को मुंह मांगा दान दिया जाता था। भाट लोग और वन्दीगण उच्च स्वर से विरुदावली बोल रहे थे। दर्शकों की अपार भीड़ लगी हुई थी।

यात्रा के प्रथम दिवस से ही सेठ रयपतिने अन्नक्षेत्र (दान शाला) खोल दिया था। दिल्ली से चलकर संघ कन्यानयन आया। वहां युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरिजी के कर-कमलों से प्रतिष्ठित श्री महावीरजी तीर्थ के दर्शन किए। वहां के श्रेष्ठी पूना, पद्स, राजा, रानू, ठ० देपाल, सा० काला; खारड़ पूना, आदि समुदाय व आशिका के देदा आदि सुश्रावकों के साथ संघ आगे वढ़ा। स्थान स्थान पर पूजा प्रभावना करता हुआ यात्री संघ नरभट पहुंचा। वहां भी श्री जिनदत्तसूरि महा-राज द्वारा प्रतिष्ठित सातिशय नवफणा पार्श्वनाथ भगवानकी

नाना भक्ति पूर्वक वन्दना की। वहां से सा० भीमा, देवराज और खाटू से सा० गोपाल आदि, नवहा,फूंफणू निवासी सा० कान्हा आदि विधि समुदाय भी संघ के साथ हो गया। नाना प्रकार से शासनोन्नति करता हुआ समस्त संघ फलौदी पहुंचा। भक्तिपूर्वक श्री पार्श्वनाथ भगवान की यात्रा की।

सेठ रयपति द्वारा कुंकुमपत्रियों से पूर्व आमंत्रित सेठ हरपाल पुत्र गोपाल, सा० पासवीर पुत्र नन्दन, सा० हेमल पुत्र कडुया, सा० पूर्णचन्दपुत्र हरिपाल, सा० पेथड़, वाहड़, लाखण सीवा, सामल, कीकट आदि उच्चनगरके श्रावक एवं देवराजपुर के सा० वस्तुपालादि, क्यासपुर के साह मोहण आदि, मरुकोट के शाह ताल्हणादि सिन्धु देस का संघ भी यहां आ पहुंचा। इसी प्रकार नागौर आदि सपादलक्ष देस के सा० लखमसिंह आदि, मेड़ता के साह आंबादि, कोशवाण के मंत्री केल्हादि, नदी के प्रवाह के सदृश आकर उस विशाल संघ-रत्नाकर में सम्मिलित हो गये।

वहां से समस्त संघ गुड़हा के साह मेलू आदि को लेकर जालोर पहुंचा। वहां के संघ ने राजकीय अधिकारियों के साथ संघ का स्वागत किया। यात्री संघ ने समस्त जिनालयों में दर्शन कर चैत्यपरिपाटी की। वहां के श्रावक महिराज, कोरंटक के साह गांगा आदि अनेक नर-नारी संघ के साथ हो चले। समस्त संघ श्री श्रीमालनगर में शान्तिनाथ और भीमपल्ली व वायड़में महावीर प्रभु की यात्रा कर ज्येष्ठ

कृष्णा १४ को गुजरात देश की राजधानी पाटण नगर में पहुंचा। उस समय वह नगर मुसलमान व्यापारियों से भरा हुआ था।

पाटण में स्थावर तीर्थ श्री शांतिनाथ भगवान और जंगम तीर्थ श्री जिनकुशलसूरिजी के चरणारविन्दों में साह रयपति, साह महणसिंह आदि समस्त संघ ने भक्तिपूर्वक वन्दना की। शांतिनाथ भगवान के मन्दिरमें अष्टान्हिका महोत्सव मनाया गया। पाटणके समस्त जिनालयों की विधिवत् चैत्य-परिपाटी की गई।

संघपति सेठ रयपति, महणसिंह, श्रे० गोपाल, जवणपाल, काला, हरिपाल, आदि देशान्तरीय श्रावकों व स्थानीय सेठ तेजपाल, व संघ के पृष्ठरक्षक राजसिंह, श्रीपति पुत्र कुलचंद्र, धीणा पुत्र गोसल आदि पाटण और हमीरपुर के श्रावक समुदाय ने सूरिजी से संघ के साथ यात्रार्थ पधारने के लिये सानुरोध प्रार्थना की "वर्षाकाल सन्निकट है, संघ के मंगल के लिए आप शीघ्र ही पधारिये! ताकि हम सब लोगों की तीर्थ यात्रा की भावना सफलीभूत हो!" संघ की प्रबल प्रार्थना के कारण सूरिजी ने मिती ज्येष्ठ शुक्ला६ के दिन शुभ मुहुर्त में गुरुदेव श्री जिनचन्द्रसूरिजी का ध्यान करते हुए १७ साधु एवं जयर्द्धि महत्तरा, पुण्यसुन्दरी गणिनी आदि १६ साध्वियों सहित गिरिराज की यात्रार्थ संघ के साथ विहार किया।

इस चतुर्विध संघ-सेना के सेनापति सेठ रयपति पृष्टरक्षक

सेठ राजसिंह, प्रबल योद्धा महणसिंह,जवणपाल,भोजा, काला, ठ०फेरू ठ०देपाल श्रे०गोपाल, तेजपाल,हरिपाल, मोहण आदि महर्द्धिक श्रावक थे। संघ के साथ पाँचसौ गाड़े सैंकड़ों घोड़े और अगणित प्यादे थे। स्थान-स्थान पर धर्म-प्रभावना करते हुए श्री संखेश्वरजी पहुंचे। वहां पुरिसादानीय श्रीपार्श्व-नाथ प्रभुकी यात्रा महापूजा, ध्वजारोपणादि करके मुसलमान सूबेदारों के सहाय्य व अधिष्ठायक देव के सानिध्य से समस्त यात्री दण्डकारण्यवन् दुर्गम वालाक देश को पार करके संघ गिरिराज श्री शत्रुञ्जय की तलहट्टिका में पहुंचा। वहां श्री पार्श्वनाथ प्रभु की समारोहपूर्वक यात्रा, पूजा करके मिती आषाढ कृष्णा ६ को समस्त संघ परम पुनीत गिरिराज पर चढ़ा।

तीर्थपति श्रीआदिनाथ स्वामी के दर्शन कर भव्यों ने जन्म जन्मान्तर के मिथ्यात्व को दूर कर परम आनन्द प्राप्त किया। सूरिजी महाराज ने प्रभु के समक्ष नवीन स्तोत्रों का निर्माण कर स्तुति की। सेठ रयपति ने सर्व प्रथम अपने परिवार के साथ प्रभु के,नवाङ्गों की स्वर्णमुद्रा से पूजा की। अन्य महर्द्धिक श्रावकों ने भी रुपयों से यथाशक्ति पूजा की। सूरिजी ने उसी दिन युगादिदेव के समक्ष यशोभद्र, देवभद्र नामक क्षुल्लकों को दीक्षा दी।

संघपति रयपति ने सौराष्ट्र नरेश महीपालदेव की दूसरी देह के सदृश सेठ मोक्षदेव, उनके छोटे भाई और श्रीश्रीमाल

उज्जल कुलप्रदीप राजसिंह ने नाना प्रकार के समारोह से संघ-पूजा, स्वधर्मीवात्सल्यादि करके पुण्योपार्जन किया। मिती आषाढ वदी ७ को जलयात्रा करके आषाढ़ वदि ८ के दिन युगादिदेव के मूल चैत्य में स्वनिर्मापित नेमिनाथजी आदि की प्रतिमाएँ[१] स्वभण्डार योग्य समोशरण, जिनपतिसूरि, जिनेश्वरसूरि प्रभृति गुरु-मूर्तिएं आदि की प्रतिष्ठाएं बड़े भारी महोत्सव पूर्वक श्रीजिनकुशलसूरिजी के कर कमलों से हुई; उसी दिन सेठ तेजपाल ने अपने भ्राता रूद्रपाल के साथ पाटण में पूर्व प्रतिष्ठित युगादिदेव के बिम्ब को संघ सहित अपने बनवाए हुए नवीन प्रासाद में स्थापित कराया। प्रासाद की प्रतिष्ठा भी सूरिजी ने की। शिल्पियों को स्वर्ण मय हस्तसंकलिका, कंबिका और रेशमी वस्त्रादि देकर सतुष्ट किया।

आषाढ वदि ६ के दिन मूल मन्दिर में मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहण, परिग्रह प्रमाण, सामायकादि व्रत धारण का

संवत् १३८० आषाड़ वदि ८ श्री शत्रुंजय श्री मुनिसुव्रत स्वामी-बिंबं श्रीजिनचन्द्रसूरि शिष्यैः श्रीजिनकुशलसूरिभिः प्रतिष्ठितं कारितं पद्मा‥ न० रासल न० राजपाल पुत्र न० नागड न० नेमिचन्द्र न० दुसत श्री परिवार परिवृतैः स्वकुटुम्बकैः शुभंभवतु (खरतरवसही शत्रुंजय)।

नन्दीमहोत्सव हुआ। पूज्य श्री ने इसी दिन सुखकीर्ति गणि[1] को वाचनाचार्य पद दिया। सहस्रों श्रावक श्राविकाओं ने व्रतादि ग्रहण किये, नवनिर्मित प्रासाद पर ध्वजादण्ड चढ़ाया गया। सेठ रयपति व तेजपाल आदि ने अपने मंदिर व मूलमंदिर में समारोह पूर्वक पूजाएं पढवाई। याचकों को प्रचुर दान देकर संतुष्ट किया।

इस प्रकार शत्रुञ्जय पर दस दिन पर्यंत बड़ा भारी समारोह रहा। इस महोत्सवमें उच्चानगर के रोहडहेमल के पुत्र-रत्न सा० कडुआ सुश्रावक ने भ्रातुष्पुत्र हरिपाल के साथ २६७४) द्रमकी बोली देकर इन्द्रपद ग्रहण किया। धीणा के पुत्र गोसल ने ६००) द्रम (तत्कालीन मुद्रा) देकर मंत्रिपद लिया एवं अन्यान्य श्रावकों ने भी इन्द्र परिवार योग्य भिन्न भिन्नपदग्रहण किये। इससे श्रीसिद्धाचलजीके भंडारमें ५००००) रुपयों की आमदनी हुई। सब लोगों ने वापिस तलहट्टी में आकर संघ सहित गिरनारजी की ओर प्रस्थान कर दिया।

वहां से क्रमशः प्रयाण करता हुआ यात्री संघ खंगारगढ पहुंचा। वहां के अधिपति, राज्याधिकारी और नगर के लोगों ने संघ के सामने जाकर उसे सत्कृत किया। रात भर वहां रहकर प्रातःकाल खंगारगढ़ में चैत्यपरिपाटी की। आषाढ़ शुक्ला १४ को रैवताचल पर आबाल ब्रह्मचारी श्री नेमिनाथ

१—इनकी दीक्षा सं० १३४२ मिती वैशाख शुक्ला १० के दिन जालौर में श्री जिनचन्द्रसूरिजी के कर-कमलों से हुई थी।

चौथा प्रकरण

भीमपल्ली का संघ

पाटण में चातुर्मास के अनंतर सं० १३८१ वैशाख कृष्णा ५ के दिन शांतिनाथ भगवान के विधिचैत्य में श्री जिनकुशलसूरिजी के करकमलों से विराट् प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न हुआ। उसमें योगिनीपुर के श्री श्रीमाल रुद्रपाल, नींवा, जावालिपुर के मंत्री भोजराज केपुत्र सलखण-सिंह रंगाचार्य लखणा, साचोर के मंत्री मलयसिंह, भीमपल्ली के वीरदेव, खम्भात के व्य० छाड़ा, श्री बोधा व वेलाकुल के सा० देपाल, मं०कुमर, सा० खीमड़, आदि श्रावक समूह आये थे। पन्द्रह दिन पर्यन्त धार्मिक कार्यों की बड़ी भारी धूम रही। चतुर्थी के दिन सेठ तेजपाल, रुद्रपाल, श्री श्रीमाल साह आना, राजसिंह, भण० लूणा, सा० क्षेमसिंह, देवराज भण० पद्म,० मन्ना आदि समस्त पत्तनीय संघ ने जलयात्रा पूर्वक प्रतिष्ठा महोत्सव किया।

प्रतिष्ठा के समय सूरिजी ने जालोरके लिये महावीर बिंब, देवराजपुर के लिए आदिनाथ बिम्ब, शत्रुञ्जय के वूल्हावसही के जीर्णोद्धारार्थ सा० छज्जल पुत्र राजसिंह और मोखदेव कारित श्रेयांसनाथादि बिम्ब भण० लूणा कारित शत्रुञ्जय के निजी

अष्टापद प्रासाद के लिए चतुर्विंशति जिन बिम्ब आदि २५० पाषाण और पित्तल की अगणित मूर्तियां, उच्चापुर के लिए श्री जिनदत्तसूरि, जालौर और पाटण के लिये श्री जिनप्रबोधसूरि[1], देवराजपुर के योग्य श्रीजिनचन्द्रसूरि और अम्बिका, अधिष्ठायकादि मूर्तिएं, और स्वभंडार योग्य समोसरण की भी प्रतिष्ठा की।

वैशाख कृष्णा ६ के दिन व्रतग्रहण, मालारोपण नन्दी-महोत्सव आदि अतिशय विस्तार से किये गए। देवभद्र, यशोभद्र को बड़ी दीक्षा व सुमतिसार, उदयसार, जयसार नामक क्षुल्लकों एवं धर्मसुन्दरी, चारित्रसुन्दरी, नामक क्षुल्लिकाओं को दीक्षा दी; जयधर्म गणि को उपाध्याय पद से अलंकृत किया गया। बहुतसी साध्वियां व श्राविकाओं ने माला ग्रहण की। बहुतों ने द्वादश व्रत ग्रहण किये।

भीमपल्ली के सुप्रसिद्ध श्रावक वीरदेव आदि की विज्ञप्ति से सूरिजी पाटण से विहार कर भीमपल्ली पधारे। वीरदेव कारित प्रवेशोत्सवपूर्वक मितीवैशाख वदि १३ के दिन वहां के

१—यह मूर्ति अभी देवलवाड़ा में है, इसका लेख नाहरजी के लेखांक २१८८ में छपा है। कराने वाले का नाम मेहा श्रावक है।

२—यह मूर्ति बीकानेर के श्री महावीर जी (वेदों में) के मंदिर में है। इसपर निम्नोक्त लेख खुदा हुआ है :—

"सं० १३८१ वैशाख वदि ५ श्री जिनचन्द्रसूरि शिष्यैः श्री जिनकुशलसूरिभिरंबिका प्रतिष्ठितम्॥" [बीकानेर जैनलेखसंग्रह ले०१३१२].

जिनालय में श्री महावीर स्वामी के दर्शन किये। सूरिजी के पधारने से धर्म ध्यान का ठाट लग गया। सुश्रावक वीरदेव ने सा० मालदेव व सा० हुलमसिंह नामक अपने भ्राताओं के साथ सम्राट गयासुद्दीन से शत्रुञ्जय यात्रा के निमित्त फरमान प्राप्त कर कुंकुमपत्रिकाओं द्वारा देश विदेश के समस्त संघ को आमंत्रित किया। श्रावक वीरदेव अपने उज्ज्वल कर्त्तव्यों से सेठ खींवड़ सा० अभयचन्द, सा० माढ़ल, सा० धनपाल सा० सामल आदि अपने पूर्वजों से भी आगे बढ़ा हुआ था।

संघ के एकत्र होने पर ज्येष्ठ कृष्णा ५ के शुभ मुहुर्त्त में वीरदेव को संघ सेना के परिचालनार्थ सूरिजी ने संघपति पद प्रदान किया। राजदेव के पुत्र झांझा को सा० पूर्णपाल, सा० सूंटा नामक भाइयों के साथ संघ का पृष्ठरक्षक नियुक्त किया। सूरि महाराज पुण्यकीर्ति, सुखकीर्ति आदि १२ साधु प्र० पुण्यसुन्दरी आदि साध्विओं के साथ वीरदेव कारित देवालय में चतुर्विंशति जिनपट्टक स्थापित कर संघ के साथ चले। यद्यपि चातुर्मास सन्निकट था। किन्तु सूरिजी संघकी प्रबलप्रार्थना को अस्वीकृत न कर सके क्योंकि संघ तीर्थङ्करों के भी आदरणीय है। संघ के साथ ३०० गाडे और अनेक ऊँट घोड़े, रथ आदि वाहन तथा असंख्य पैदल यात्री थे। बड़े समारोह के साथ भीमपल्ली से प्रयाण करके दो दो दिन रह कर वायड़ नगर में महावीर प्रभु और सैरिसा में पार्श्वनाथ स्वामी के तीर्थ में महाध्वजारोपपूर्वक यात्रा की। अवारित सत्र

खोला। इसके बाद सरखेज नगर में पधारे देवालय आदि का प्रवेशोत्सव बड़े भारी समारोह के साथ हुआ। वहां से निकटवर्ती आसापल्ली के श्रावक महणपाल, मण्डलीक, वैजल आदि विधि समुदाय के आग्रह से सूरि महाराज संघ सहित आसापल्ली पधारे। संघ ने बड़े समारोह से आदिनाथ स्वामी की यात्रा कर मालारोपण महोत्सव किया।

वहां से स्थान स्थान में धर्म प्रभावना करता हुआ संघ खंभात पहुंचा। सेठ वीरदेव ने सब नगर निवासी लोगों को एकत्र कर सूरिजी का प्रवेशोत्सव वर्णनानीत समारोह के साथ किया। हिन्दू राज्य में जिस प्रकार सुप्रसिद्ध मंत्रीश्वर वस्तुपाल ने (सं० १२८६ में) श्री जिनेश्वरसूरिजी महाराज का और यवन राज्य में सेठ जेसल[१] (१३६४ व १३६७ में) ने जिनचन्द्रसूरिजी का नगर प्रवेशोत्सव किया था उसी प्रकार यह प्रवेशोत्सव भी हिन्दू राजत्वकाल के समान बड़े भारी धूमधाम से हुआ था।

सूरिजी ने संघ के साथ नवाङ्गी-वृत्तिकारक श्री अभयदेव सूरिजी द्वारा प्रगट किए हुए भगवान पार्श्वनाथ और अजितनाथ स्वामी की नव्य निर्मित स्तुति, स्तोत्रों द्वारा भक्तिपूर्वक यात्रा की। इसके पश्चात् निरन्तर ८ दिन तक सेठ वीरदेव

१—इन्होंने खम्भातके कोट्टड़िका पाड़े में श्रीअजितनाथ भगवानका विधि-चैत्य और पौषधशाला बनवाई थी। श्री अजितनाथ जिनालय का लेख "प्राचीन जैन लेख संग्रह दूसरे भाग' में छपा है।

आदि महर्द्धिक श्रावकों ने खंभात के संघ के साथ महाध्वजारोपण, महापूजा, अवारित सत्र, संघवात्सल्य, और इन्द्र-महोत्सव में प्रचुर द्रव्य व्यय किया। कडुआ के पुत्र दो० खासराज के अनुज दो० सामल ने बारह सौ द्रस १२००) भेंट करके इन्द्रपद ग्रहण किया, अन्यान्य श्रावकों ने मन्त्री आदि पद ग्रहण किए। खंभात की यात्रा कर समस्त संघ तीर्थाधिराज श्री सिद्धाचलजी की ओर चला।

उस समय देश में जगह जगह राजविग्रह उपस्थित था। भय के मारे जहां तहां नगर ग्राम शून्य हो रहे थे, तथापि गुरुदेव की कृपा से आनन्दपूर्वक चलता हुआ संघ क्रमशः धांधूका नगर पहुंचा। वहां के प्रधान श्रावक मंत्रीदलीय ठ० उदयकरण ने संघ की बहुतसी भक्ति की। यहां से क्रमशः गिरिराज श्री विमलाचल की तलहट्टी में पहुंचा। सूरिजी ने संघ के साथ गिरिराज पर श्री ऋषभदेव भगवान की द्वितीय वार यात्रा की। अपने बनाये हुए भक्तिरस पूर्ण सुन्दर स्तोत्रों से प्रभुकी स्तुति की। संघपति वीरदेव, पृष्ठरक्षक सेठ तेजपाल, नेमचन्द, दिल्ली निवासी श्रीश्रीमालरुद्रपाल, सा० नीमदेव, मन्त्रिदलीय, ठ० जवणपाल, सा० लखमा, जालौर के सा० पूर्णचन्द्र, सहजा, गुडहा के सा० वाघू आदि महर्द्धिक श्रावकों ने १० दिन पर्यन्त गिरिराज पर महाध्वजारोपण, वड़ीपूजा, अवारित सत्र, स्वधर्मीवात्सल्य, संघपूजा, इन्द्रपद महोत्सव आदि किये। याचकों को वस्त्रालङ्कार वितरण किये गये। जैन शासन की महती प्रभावना हुई।

सा० लोहट के पुत्ररत्न सा० लखमा श्रावक ने ३७००) रुपये समर्पण कर इन्द्रपद ग्रहण किया। दिल्ली के श्री श्रीमाल सुरराज पुत्र रुद्रपाल के छोटे भाई नीमदेव ने १२००) द्रम से मन्त्रिपद और शेष महर्द्धिक श्रावकों ने अन्यान्य पद ग्रहण किये। सब मिलाकर संघ द्वारा युगादिदेव के भंडार में १५०००) रूपयों की आमदनी हुई।

श्री आदिनाथ भगवानके विधिचैत्य में नव-निर्मित चौवीस जिनालय, देवकुलिकाओं पर पूज्यश्री द्वारा प्रतिष्ठित कलश ध्वजादि चढ़ाये गये। तत्पश्चात् समस्त संघ सहित सूरि महाराज तलहट्टी में पधारे। वहां से लौटते हुए पुनः सेरिसा में श्री पार्श्वनाथ स्वामी की यात्रा कर संखेश्वर आए, वहां चार दिन तक अवारित सत्र, महापूजा, ध्वजारोपणादि उत्सव हुए। पाडल ग्राम में आकर श्री नेमीश्वर भगवान को संघ सहित वन्दन किया। सूरिजी ने नवीन स्तोत्र रचकर प्रभु के गुणानुवाद गाये। वहां से क्रमशः विहार करते हुए श्रावण शुक्ला ११ को संघपति वीरदेव द्वारा किये हुए प्रवेशोत्सव पूर्वक भीमपल्ली पधार कर श्री महावीर स्वामी के दर्शन किये। देशान्तरीय समस्त संघ संघपति द्वारा सम्मानित होकर अपने-अपने स्थान को लौटा।

सं० १३८२ मिती वैशाख सुदि ५को सेठ वीरदेव ने दीक्षा, मालारोपणादि के नन्दी महोत्सव किये। सूरिजी ने विनयप्रभ, मतिप्रभ, हरिप्रभ, सोमप्रभ और कमलश्री, ललितश्री को

दीक्षा दी; बहुतसी साध्वियाँ और श्राविकाओं ने माला ग्रहण की। अनेक श्रावकों ने सम्यक्त्व, सामायिक, परिग्रह प्रमाणादि व्रत ग्रहण किये। इस महोत्सव में स्थानीय, पत्तन, प्रल्हादनपुर, बीजापुर, आशापल्ली आदि के श्रावक एकत्र हुए थे। तीन दिन तक अमारि उद्घोषणा की गई थी। श्री जिनकुशलसूरिजी के नेतृत्व में यह समारोह हिन्दू राज्जकाल की भांति बड़ा ही चित्त-चमत्कृति उत्पन्न करने वाला हुआ था।

सूरि महाराज साचौर के संघ की बीनति से विहार कर वहां पधारे। श्री संघ ने समारोहपूर्वक प्रवेशोत्सव करके श्री महावीर भगवान के दर्शन कराये। वहां पर मासकल्प करके लाटहृद पधारे, वहां भी स्वागतपूर्वक श्रीमहावीर भगवान की बन्दना की। पन्द्रह दिन तक धर्म प्रचार द्वारा शासन प्रभावना करके वहां से विहार किया। क्रमशः बाहड़मेर पधारे। आदिनाथ प्रभु के दर्शन किये। संघ के विशेष आग्रह से चातुर्मास भी वहीं किया और "चैत्यवन्दन-कुलक-वृत्ति" नामक ग्रन्थ की रचना की।

सं० १३८३ पौष शुक्ला १५ को सा० प्रतापसिंह आदि स्थानीय श्रावकों के आग्रह से जेसलमेर, लाटहृद, सत्यपुर, प्रल्हादनपुर आदि के श्रावकों के समक्ष अमारि घोषणापूर्वक उपस्थापन (बड़ी दीक्षा), मालारोपण, सम्यक्त्व प्रभृति व्रत ग्रहण नन्दीमहोत्सव आदि सम्पन्न किए। इसी वर्ष जालौर

के संघ की आग्रह भरी वीनति से सूरिजी वाहड़मेरु से विहार कर लवणखेटक पहुंचे। वहां सूरिजी के पूर्वज वाहित्रिक उद्धरण ने शांतिनाथ जिनालय बनवाया था और इनके गुरु श्रीजिनचन्द्रसूरिजी का जन्म और दीक्षा भी वहीं हुई थी। यहां से अपनी जन्मभूमि सम्यानयन में पधार कर प्रवेशोत्सव पूर्वक श्री शांतिनाथ भगवान के दर्शन किये। लवणखेटक और समियाना के श्रावकों को संतुष्ट करके जालौर पधारे। संघ के प्रवेशोत्सव पूर्वक स्व प्रतिष्ठित श्रीमहावीर भगवान की वन्दना की। वहां मंत्रीश्वर कुलधर के वंशप्रदीप मं० भोजराज पुत्र सलखणसिंह, सा० चाहड़ पुत्र झांझण आदि स्थानीय संघ की ओर से श्रेष्ठी हरपालपुत्र गोपाल आदि उच्चपुर और देवराजपुर के संघ, पाटण के सेठ तेजपाल, रुद्रपाल आदि, जेसलमेर, समियाणा, श्रीमाल, साचौर, गुढहा आदि अनेक स्थानों के संघ के समक्ष पन्द्रह दिन पर्य्यन्त दीक्षार्थियों को सत्कृत किया गया। अनेक श्रावकों ने नाना प्रकार के दान किए, अमारि घोषणादि द्वारा शासन-प्रभावना करते हुए सं० १३८३ फाल्गुन वदि ९ को सूरिजी के नेतृत्व में विराट महोत्सव पूर्वक प्रतिष्ठा व्रतग्रहण, उपस्थापन, मालारोपण, सम्यक्त्वारोपादि नन्दी उत्सव मनाये गए।

इस अवसर पर श्री जिनकुशलसूरिजी ने मंत्रीदलीय ठ० प्रतापसिंह के पुत्ररत्न ठ० अचलसिंह कारित राजगृहस्थ वैभारगिरि के चतुर्विंशति जिनालय के मूलनायक योग्य श्री महावीर

स्वामी आदि अनेक पाषाण और धातुमय[1] बिम्ब, गुरुमूर्तियां और अधिष्ठायकों की प्रतिष्ठा की। न्यायकीर्ति, ललितकीर्ति, सोमकीर्ति[2], अमरकीर्ति, ज्ञानकीर्ति, देवकीर्ति आदि ६ साधुओं को दीक्षा दी। अनेकों श्राविकाओं ने मालाग्रहण की, बहुतों ने सम्यक्त्वादि १२ व्रत ग्रहण किए।

१—बीकानेर के श्री सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर में श्री पार्श्वनाथ प्रभु की एक धातुमूर्ति विद्यमान है, जिसपर यह लेख है।

"सं० १३८३ वर्षे फाल्गुन वदि नवमी दिने सोमे श्री जिनचन्द्रसूरि शिष्य श्री जिनकुशलसूरिभिः श्री पार्श्वनाथ बिंबं प्रतिष्ठितं कारितं दो० राजा पुत्रेण दो० अरिसिंहेन स्वमातृ पितृ श्रेयोर्थं ॥"

(बीकानेर जैन लेख संग्रह लेखाङ्क १७६७)

२ आगरे वाली प्रति में इनका यमकमय पार्श्व स्त० गा० १६ (आदि अभिनव स्तवनं जिन पावनं) उपलब्ध है।

पांचवां प्रकरण

——::——

सिन्धु देश में धर्म प्रचार

—:※:—

श्री जिनकुशलसूरिजी का लोकोत्तर प्रभाव दिनों दिन बढ़ने लगा। उनकी धवलकीर्ति सर्वत्र व्याप्त हो गई। सिन्धु देश में उस समय मिथ्यात्व का प्रचार बहुत प्रबलता से था। उसे उन्मूलन कर सन्मार्ग प्रवर्त्तन में सूरिजी को समर्थ जानकर उच्चानगर और देवराजपुर के महर्द्धिक श्रावकों ने सिन्ध प्रान्त में पधारने के लिये उनसे सानुरोध प्रार्थना की। पूज्यश्री ने भी भावी शासन प्रभावना विदितकर जालौर से चैत्रकृष्ण में विहार कर दिया। शम्यानयन और खेड़नगर होते हुए मरुस्थल के प्रमुख जेसलमेर महादुर्ग में पधारे। यहां के विधि-समुदाय ने बड़े भारी समारोह से प्रवेशोत्सव कराया। सूरिजी ने स्वहस्त प्रतिष्ठित सप्रभाव श्री पार्श्व प्रभु के चरण-कमल वन्दन किये। पन्द्रह दिन तक विराजने से यहां भी अच्छी धर्म्मोन्नति हुई।

उच्चानगर और देवराजपुर के श्रावकों ने पुनः सूरिजी से शीघ्र पधारने की वीनति की। तब उनके अनुरोध से ग्रीष्मऋतु की कड़ी धूप में भी मरुस्थल के रेतीले महासमुद्र को पत्तन के

राजमार्ग की तरह पार कर ईर्यासमिति आदि समितियों का पालन करते हुए देवराजपुर पहुंचे। वहां स्वहस्त प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव भगवान को सविधि वन्दन किया। वहां मास-कल्प करके सद्धर्म का प्रशंसनीय प्रचार करके मिथ्यात्व को दूर भगा दिया। आपका सदुपदेश ग्रहण करने के लिए श्रावकवर्ग सदा लालायित रहते थे। अपने मनोरथ को पूर्ण हुआ देखकर उन लोगों के हर्ष का कोई पार न रहा, धार्मिक कार्यों में मनोयोग देकर खूब लाभ लिया। तत्पश्चात् सूरिजी उच्चनगर पधारे। आपके शुभागमन से नागरिक लोग अति प्रसन्न हुए। नगर प्रवेश बड़े धूमधाम से हुआ। उसमें हिन्दू मुसलमान सभी लोग शामिल हुए थे। बारह प्रकार के वाजित्र बजने लगे, महर्द्धिक श्रावक याचकों को खूब दान देते थे। पूर्वकाल में हिन्दूशासन में श्रीजिनपतिसूरिजी के पधारने से पावन हुई इस नगरी में सूरिजी ने चौवीसी-पट्टालङ्कार श्रीऋषभदेव भगवान के दर्शन किये। आपश्री के उपदेशों का यहां की जनता ने भरपूर लाभ उठाया। अनेकों मिथ्यात्व प्रवृत्तियें निर्मूल हो गईं। यहां एक मास तक धर्म प्रचार कर सूरि महाराज पुनः देवराजपुर पधारे। संवत् १३८४ के माघ शु० ५को श्रेष्ठि गोपाल पुत्र नरपाल, सा०वयरसिंह नन्दन मोखदेव, लाखण, आंवा, कडुया, हरिपाल, चीकिल, चाहड़ आदि अनेक उच्चकीय महर्द्धिकश्रावकों एवं देवराजपुर, क्यासपुर, बहरामपुर, मलिकपुर आदि अनेक स्थानों के श्रावक, राणक,

राजलोक, नगरलोक के प्रबल अनुरोध से अनेक लब्धिसम्पन्न श्री जिनकुशलसूरिजी ने प्रतिष्ठा व्रतग्रहण, मालारोपण, नन्दी-महोत्सव आदि बड़े विस्तार से सम्पन्न किये।

इस महोत्सव में राणुककोट व क्यासपुर के विधिचैत्य के मूलनायक योग्य युगादि बिम्बद्वय और अनेक पाषाण एवं पित्तलमय मूर्तियों[1] की प्रतिष्ठा की गई। भावमूर्ति, मोदमूर्ति, उदयमूर्ति, विजयमूर्ति, हेममूर्ति, भद्रमूर्ति, मेघमूर्ति, पद्ममूर्ति, हर्षमूर्ति आदि ९ साधु और कुलधर्मा, विनयधर्मा और शीलधर्मा नामक तीन साध्विओं की दीक्षा हुई। ७७ श्राविकाओं ने माला ग्रहण की, अनेकों ने परिग्रह परिमाण व्रत लिये। सिन्धु देश के श्रावकों में सूरिजी की कृपा से जागृति की नई लहर उत्पन्न हो गई।

संवत् १३८५ में उच्चापुर, बहिरामपुर, क्यासपुर आदि स्थानों के खरतर विधि समुदाय की विद्यमानता में फाल्गुन शुक्ला ४ के दिन श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज ने नवदीक्षित क्षुल्लक व क्षुल्लिकाओं की उपस्थापना की। श्री कमलाकर गणि को वाचनाचार्य पद दिया गया। २० श्राविकाओं ने माला

१—इनमें से एक धातु-मूर्ति बीकानेर के श्री चिन्तामणिजी के मन्दिरस्थ गर्भगृह में विद्यमान है, जिसपर इस प्रकार का लेख है :—

"सं० १३८४ माघ शुक्ला ५ श्री जिनकुशलसूरिभिः श्री आदिनाथ बिंब प्रतिष्ठितं कारितं च सा० सोमण पुत्र सा० लाखण श्रावकेन भ्रातृ हरिपाल युतेन। (बीकानेर जैन लेख संग्रह ले० २६६)

ग्रहण की, बहुतोंने परिग्रह परिमाण आदिव्रत उच्चारण किए।

सं० १३८६ में बहिरामपुर के खरतर गच्छीय संघ के विशेष अनुरोध से सूरिजी अपनी शिष्य-मण्डली के साथ विहार करते हुए बहिरामपुर पधारे। सा० भीमा, देदा, धीर, रूपादि स्थानीय श्रावकों ने विस्तारपूर्वक प्रवेशोत्सव किया। सूरिजी ने वहाँ श्री पार्श्वनाथ स्वामी के जिनालय में प्रभु के दर्शन किए। पूज्यश्री को वन्दनार्थ आये हुए नाना स्थान के संघों की बहिरामपुर के विधि-संघ और कंवले (उपकेशगच्छीय) श्रावक ने भक्ति की।

क्यासपुर के खरतर गच्छीय संघ के प्रबल आग्रह से सूरि महाराज बहिरामपुर से विहार कर क्यासपुर की ओर पधारे। मार्गवर्ती शिलारवाहण में वहां के सा०धीणग, जेठू, वेला, और महाधर आदि श्रावक अपने मुसलमान अधिपति को लेकर सूरिजी के सन्मुख आए। वाजित्र ध्वनि के साथ बहिरामपुर की भांति धूम-धाम से प्रवेश कराया। यहां पर सूरिजी ६ दिन विराजे, इन ६ दिनों में यहां लगातार स्वधर्मीवात्सल्य, अवारित सत्र व संघपूजादि पुण्यकार्य बड़ी उत्तमता से होते रहे। इसके पश्चात् विहार कर सूरिजी मध्यवर्ती खोजावाहन स्थान में पहुंचे। वहां के श्रावकों ने भी समारोहपूर्वक प्रवेशोत्सव कराया। यहां से क्यासपुर पधारे। स्थानीय श्रेष्ठी मोहण, कुमरसिंह, व्य० खीमसिंह, नाथू जट्टड़ आदि श्रावक समुदायने अपने मुसलमान अधिपति नवाबके तुर्कों एवं सा०

चाचिंग आदि कोमल (उपकेशगच्छीय) श्रावकों के साथ श्री जिनकुशलसूरिजी का प्रवेशोत्सव अजमेरमें जिस प्रकार अंतिम हिन्दू-सम्राट् पृथ्वीराज ने सं० १२३६ में श्रीजिनपतिसूरिजी का किया था, उसी प्रकार अभूतपूर्व रीति से किया। सूरिजी ने स्वहस्त प्रतिष्ठित श्री ऋषभदेव भगवान के पादारविन्दों में वन्दना की। इस प्रवेशोत्सव का नगरजनों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। वे लोग सूरिजी के चारित्र पालन एवं विद्वतादि गुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। अनेकों कंवलागच्छ के श्रावक और विपक्षी लोग भी सूरिजी के उत्तम चारित्र और ज्ञान-ध्यान से प्रभावित होकर आपश्री के परम भक्त हो गए।

कौतुहलवश कितने ही तुर्क लोग आपके पास आते थे, वे भी आपकी वचनचातुरी और विद्वता से मुग्ध हो जाते। श्रावक लोग नित्यनये-नये पक्वानों द्वारा स्वधर्मीवात्सल्यादि किया करते थे। धर्म-ध्यान, तपश्चर्या का खूब ठाठ रहा।

चातुर्मास निकट आने पर वहां से विहार करते हुए पुनः देवराजपुर जाकर स्वागत-पूर्वक युगादि भगवान के दर्शन किये। सं०१३८६ का चातुर्मास यहीं व्यतीत किया। सं०१३८७ में श्रेष्ठी नरपाल, आंवा, लाखण वीकल आदि उच्चनगर के श्रावकों के विशेष आग्रह से सूरिजी बारह साधुओं को लेकर उच्चा नगर पधारे। पूर्ववत् एक मास पर्यन्त शासन प्रभावना की। परशुरोरकोट वास्तव्य सा० हरिपाल, रूपा, आसा, सामल, आदि श्रावकों के आग्रह से उच्चानगर से विहार कर अनेक

श्रावक समूह के साथ मार्गस्थ बहुत से ग्रामों के श्रावकों की वन्दना स्वीकारते हुए परशुरोरकोट में समारोह पूर्वक प्रवेश किया। यहां भी अनेक प्रकार के धर्मकृत्य हुए।

परशुरोरकोट से विहार कर वहिरामपुर पधार कर भगवान पार्श्वनाथ के मन्दिर के दर्शन किये। आगे की भांति वहां भी बड़ी शासन प्रभावना हुई। कुछ दिन के बाद विहार कर क्यासपुर आदि सिन्ध के अनेक ग्रामों में १ दिन, नगरोंमें ५ दिन इसप्रकार उग्रविहार करतेहुए देवराजपुर पधारे, ऋषभदेव भगवान को वन्दन किया। सं० १३८७ का चातुर्मास वहीं किया।

सं० १३८८ में उच्चापुर, वहिरामपुर, क्यासपुर, शिलारवाहण आदि सिन्धु देशस्थ नाना ग्राम नगर के विधि समुदाय के सम्मेलन होने पर अनेक दिनों तक नाना प्रकार के धर्मोत्सव होते हुए मार्गशीर्ष शुक्ला १० को पदस्थापन, व्रत ग्रहण मालारोपण आदि का विराट नन्दीमहोत्सव हुआ। इस अवसर पर विद्वत् शिरोमणि श्री तरुणकीर्ति गणि को आचार्य पद देकर उनका नाम श्रीतरुणप्रभाचार्य प्रसिद्ध किया। पं० लब्धिनिधान गणि को उपाध्याय पद, जयप्रिय और पुण्यप्रिय और जयश्री, धर्मश्री को दीक्षा दी गई। तेरह श्राविकाओं ने माला ग्रहण की अनेकों ने व्रत ग्रहण किये। सिन्धु देश में यह महोत्सव अभूतपूर्व और अद्वितीय हुआ था।

छट्ठा प्रकरण

—o◯o—

स्वर्गवास और उसके पश्चात्

—:※※:—

सूरीश्वर ने सं० १३८६ का चातुर्मास[1] देवराजपुरमेंकिया। वहां श्री तरुणप्रभाचार्य[2] और लब्धिनिधानोपाध्याय को स्याद्वादरत्नाकर, महातर्क रत्नाकर आदि महान् सिद्धान्तों का परिशीलन करवाया। चातुर्मास के पश्चात् अपने ज्ञानबल से स्वर्गवास निकट जानकर वहीं ठहरे। माघ

१—सं० १३८६ भादवा सुदि४ को सूरिजी के उपदेश से सुश्रावक कुमारपाल ने कल्पचूर्णि लिखी। जिसकी प्रशस्ति जेसलमेर भंडार की सूची में छपी है।

२—सं० १३६८ श्रावण कृष्णा १ को भीममल्ली में श्रीजिनचन्द्र-सूरि ने इन्हें दीक्षित किया। श्रीजिनकुशलसूरि विरचित "चैत्यवंदन-कुलक वृत्ति"के संशोधकोंमें भी आप थे। सं०१४११में दीवाली के दिन पाटण में महत्तियाण ठ० बलिराज की अभ्यर्थना से षड़ावश्यक बाला-वबोध रचा जो कि सूत्रों के भाषा-बालावबोधों में सबसे प्रथम है और गद्य भाषा की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी कुछ कथाएं "प्राचीन गुर्जर गद्य सन्दर्भ" में छपी हैं। इसकी सं० १४१२ की लिखित प्राचीन, सुन्दर प्रति बीकानेर के ज्ञान-भण्डार में विद्यमान है।

शुक्ला में आपश्री को तीव्र ज्वर और श्वासादि की व्याधि उत्पन्न हुई, उस समय अपना निर्वाण सन्निकट देखकर श्री तरुणप्रभाचार्य[1], लब्धिनिधानोपाध्याय[2] को श्रीमुख से यह फरमाया कि मेरे पट्ट योग्य सा० लक्ष्मीधर के पुत्ररत्न आंवा की धर्मपत्नी कीकी के नंदन पन्द्रह वर्ष की आयुष्य वाले मेरे शिष्य श्री पद्ममूर्ति को गच्छनायक पद समर्पण करना और गच्छ सम्बन्धी और भी कई प्रकार की शिक्षाएं देकर मिती फाल्गुन कृ०५ के पिछले प्रहर में चतुर्विध संघ के साथ क्षमापना व मिथ्या-दुष्कृत देकर; स्वयमेव अनशन ग्रहणपूर्वक पंच

इनके विद्यागुरु राजेन्द्रचन्द्राचार्य और यशकीर्ति थे। श्रीजिनपद्म सूरिजी, श्रीजिनलब्धिसूरिजी श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को सूरिपद इन्होंने ही दिया था। श्रीविजयधर्म लक्ष्मी ज्ञानमंदिर, आगरा व बीकानेरके वृहत्ज्ञान भंडार में स्थित प्राचीन स्वाध्याय पुस्तिकाओं में आपके संस्कृत प्राकृतादि में रचे हुए विद्वतापूर्ण (१६) स्तोत्र, स्तवनादि—भी उपलब्ध है ।

१—इन्होंने भी श्रीजिनकुशलसूरिजीकृत "चैत्यवंदन कुलकवृत्ति" का संशोधन किया था। इनकी दीक्षा सम्भवतः सं०१३७० माघ शु० ११ को श्रीजिनचंद्रसूरिजी द्वारा हुई थी। जिनपद्मसुरिजी के पट्टपर श्रीजिनलब्धिसूरिजी के नाम से सं० १४०० में श्रीतरुणप्रभाचार्य ने इन्हें प्रतिष्ठित किया, सं०१४०६ नागपुर में इनका स्वर्गवास हुआ था।

परमेष्टि के श्रेष्ठ ध्यान में लीन होकर दो प्रहर रात्रि बीतने पर मिती फाल्गुन कृष्णा १५ को नश्वर देह को त्याग कर स्वर्ग सिधारे।

प्रातःकाल होते ही विद्युत गति से यह समाचार चारों ओर फैल गया। सारानगर शोकाकुल हो गया। गुरुविरहवश लोगों के नयनों में नीर बहने लगा। गुरु महाराज की पवित्र देह का अन्तिम दर्शन करने एवं निर्वाणोत्सव में भागलेने के लिये आस-पासके सभी गाँवों का संघ उमड़ पड़ा। पचहत्तर (७५) मण्डपिकाओं से मण्डित इन्द्रविमान के सदृश सुन्दर निर्यान-विमान बनाया गया। गुरुदेव को इसमें संस्थापित कर बड़े महोत्सव पूर्वक शोकाकुल संघ नगर के राज मार्गों से होकर अग्निसंस्कार के निमित्त श्मशान पहुंचा। अगर, तगर, कस्तूरी मलयचन्दन, कपूर आदि सुगन्धयुक्त पदार्थों से सूरिजी की अंत्येष्ठि क्रिया की गयी। भक्त श्रावकों का हृदय अत्यधिक शोकपूर्ण हो गया।

सूरिजी के अग्नि-संस्कार के स्थान पर रीहड़ गोत्रीय श्रेष्ठी पूर्णचन्द्र के कुलदीपक हरिपाल ने स्वपुत्र भांभण, यशोधवलादि सह सपरिवार सुन्दर स्तूप निर्माण करवाया। यह स्तूप बड़ा भारी दर्शनीय व मुस्लिम-प्रधान सिन्धु देश में जैनधर्म के गौरव को बढ़ानेवाला था। दूर-दूर के श्रावक यात्रार्थ आकर गुरुवन्दन का लाभ लेने लगे।

श्री जिनपद्मसूरि पद स्थापना

सूरि महाराज की आज्ञानुसार श्री तरुणप्रभसूरिजी ने सं० १३९० ज्येष्ठ शुक्ला ६ सोमवार के दिन मिथुन लग्न में पद स्थापना का निश्चय किया। इसी बीच सिन्धु देश के राणु नगर के श्रावक रीहड़-पूर्णचन्द्र के पुत्र हरिपाल देराउर आये। उन्होंने आचार्य महोदय से पद स्थापनोत्सव स्वयं करने की महती उत्कण्ठा बता कर उनसे अनुमति प्राप्त कर ली। चारों ओर कुंकुमपत्रिकाएं भेजी गईं; सूचना पाकर सभी स्थानोंके श्रावक झुण्ड के झुण्ड आकर एकत्र होने लगे। सेठ हरिपाल ने स्वधर्मी बन्धुओं का प्रशंसनीय सत्कार, सम्मान किया। स्थानीय श्री आदिनाथ भगवान के मन्दिर को ध्वजा पताकादि से खूब सजाया। सब के हृदय हर्ष से आह्लादित हो गए। निश्चित मुहूर्त में सरस्वतीकंठाभरण श्री तरुणप्रभाचार्यजी ने महोपाध्याय जयधर्म[1], महोपाध्याय लब्धिनिधान आदि ३० साधुओं व अनेकों साध्वियों के समक्ष संघ की

१—सं० १३८१ वै० वदी ६ को पाटण में इन्हें श्रीजिनकुशलसूरिजी ने उपाध्याय पद दिया। आगरे वाली स्वाध्याय पुस्तिका में इनके रचित निम्नोक्त तीन स्तोत्र हैं।

(१) अजित देव स्तोत्र गा० २५ (खम्भात) (२) सुपार्श्वदेव स्तोत्र गा० २५ (दशपुर) (३) नवकर पल्लव पार्श्वस्तोत्र गा० २५

असंख्य भीड़में मुसलमान नवाब के पुत्र आदि के उपस्थिति में श्री पद्ममूर्ति मुनि को श्री जिनकुशलसूरिजी के पट्ट पर स्थापित किया गया। नवीन गच्छनायक का नाम श्री जिनपद्मसूरि प्रसिद्ध हुआ।

इस महोत्सव में अमारिघोषणा, याचकों को मनोवांछित दान, १ मास तक प्रतिदिन स्वधर्मीवात्सल्य आदि अनेकों सत्कार्य हुए। श्री जिनपद्मसूरिजी ने जयचन्द्र, शुभचन्द्र, साधुचन्द्र साधु और महाश्री, कनकश्री नामक साध्वियों को दीक्षा दी। पं० अमृतचन्द्र गणि[1] को वाचनाचार्य पद प्रदान किया। अनेक श्राविकाओंने माला ग्रहण की। बहुत से श्रावक श्राविकाओं ने सम्यक्त्व, सामायिक परिग्रहपरिमाण आदिव्रत उच्चारण किए। रीहड़ हरिपाल ने हजारों रूपये व्यय कर अपनी चपला लक्ष्मी को सफल की। सा० आँबा,झाझा, मंत्री वाहड़, धुस्सुर, मुहण, नागदेव, गोसल, कर्मसीह, खेतसिंह, बोहित्थादि अनेक स्थानों के महर्द्धिक श्रावकों ने भी बहुतसा द्रव्य व्यय कर पुण्य एवं यशोपार्जन किया।

१—इनकी दीक्षा सं०१३५४ मिति ज्येष्ठ कृ० १० के दिन जालौर में श्री जिनचन्द्रसूरिजी के कर कमलों से हुई थी।

इसके पश्चात् ज्येष्ठ शुक्ला ६ को सेठ हरिपाल कारित युगादिदेव भगवान आदि के बिम्ब, देवराजपुर के स्तूप व जैसलमेर, क्यासपुर के निमित्त श्री जिनकुशलसूरिजी की तीन मूर्तियों का प्रतिष्ठा महोत्सव हुआ। इसी दिन बड़े भारी आडम्बर के साथ चतुर्विध संघ ने स्वर्गीय गुरुदेव श्री जिनकुशलसूरिजी की मूर्ति स्तूप में स्थापित की। पद स्थापना महोत्सवादि बड़े विस्तार से हुए।

इन महोत्सवों के मुखिया श्रेष्ठी हरिपाल का परिचय गुर्वावली में इस प्रकार दिया है कि ये रीहड़ कुल प्रदीप सा० धनदेव पुत्ररत्न हेमल पुत्र पूर्णचन्द्र के पुत्र थे। जैन शासन की प्रभावना करने में प्रवीण थे। इन्होने शत्रुञ्जय और गिरनार की यात्रा की। जिनचन्द्रसूरिजी (सं० १३७२) और जिनकुशलसूरिजी को वीनति कर सिन्धु प्रान्त में विहार करवाया जिससे वहां जैन धर्म की बड़ी भारी उन्नति हुई। इन्होंने आचार्य और उपाध्याय पद महोत्सव करकेएवं अपनी पुत्री को दीक्षा दिलाकर महान यश उपार्जन किया था।

जिनपद्मसूरिजी के पट्टाभिषेक के अवसर पर आये हुए जेसलमेर के संघ ने अपने वहां पधारने के लिए महती विज्ञप्ति की। अतः श्री जिनपद्मसूरिजी ने दो उपाध्याय और १२ साधुओं के साथ विहार कर जेसलमेर चातुर्मास किया।

स्वर्गवास के पश्चात्

श्री जिनकुशलसूरिजी ने अपनी विद्यमानता[1] में जिस प्रकार संघ में कुशल वरता कर अपने नाम को सार्थक किया उसी प्रकार स्वर्ग सिधारने के पश्चात् भी अब तक भक्त-जनों के कुशल कल्याण करने में कल्पतरु के सदृश हैं। समय-समय पर स्मरण करने पर अनेकों भक्तजनों को प्रत्यक्ष रूप में प्रकट दर्शन देकर व परोक्ष रूप में उनके विघ्न निवारण कर

---

१ वेगड़ शाखा की पट्टावली में लिखा है कि श्री "जेसलमेर" पार्श्वनाथ मूलनायकप्रतिष्ठा देहरा नी थापी। मंगलउरि जीवतां आलियो थाप्यो ते आज लगि प्रभाविक छै एकदा बखाण करतां जाण्यो श्री शत्रुञ्जय ना देहरा दीवानी वाट उंदिरे ताणीचन्दूयो लागी तिवार गुरे मुंहपत्ति उतारी मसली तिहां थकां ते बुझाणी वली एकदा रत्नकोट वाहण आवतो बूडवा लागो तिवारे गुर ओरा माहे पैसी मंत्र बलै निहां जाइ पार उतार्यो। कपड़े भीने वाहिर आया श्रावके पुच्छयो तिवारे गुरेकपड़ो नीचवी स्वाद खारो चखाव्यो कह्यो न मानो तो आज थी साते दिन श्रावक आवस्यै तिवारे सात दिने आव्यौ प्रत्यय ऊपनो। इम अनेक अवदात छै। तिरस्यां ने पाणी पावै समर्या साद दे।

प्रत्यक्ष सुरतरु कहला रहे हैं। आपके सम्बन्ध में अनेक चमत्कार सुनने में आते हैं। उन्हें संग्रह कर लिखने से इतना ही बड़ा एक ग्रन्थ हो सकता है। विस्तारभय से हम केवल उन थोड़ीसी बातों का निर्देश करते हैं जिनका ऐतिहासिक उल्लेख भी उपलब्ध है।

(१) बीकानेर के मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र के पूर्वज मन्त्री वरसिंह देरावर की यात्रा के निमित्त अति उत्कंठित होते हुए भी राजविप्लव आदि कारणों से न जा सके तब उनके मनोरथ पूर्ण करने के लिए गुरुदेव ने बीकानेर से ४ कोश गढालय (नाल) स्थान में सम्मुख आकर स्वप्न द्वारा दर्शन दिये और फर्माया कि तुम्हारी भक्ति से मैं सन्तुष्ट हूं, तुम्हारी यात्रा यहीं सफल है! मन्त्रीश्वर ने गुरुदर्शन के स्मारक रूप स्तूप-मन्दिर उसी स्थान पर निर्माण कराया। आज भी वहाँ आपका प्रकट प्रभाव सर्वविदित है। कहा जाता है कि यहाँ के चरण भी देराउर से आये हुए हैं। सोमवार और प्रति पूर्णिमा को बीकानेर के बहुत से लोग दर्शन करने जाते हैं। कार्तिक पूर्णिमा और फाल्गुन कृष्णा १५ को वहाँ प्रति वर्ष मेला भरता है।

(२) कविवर समयसुन्दरजी जब सिन्ध प्रान्त में विचरते थे। तब संघ सहित उच्चनगर जाते हुए मार्गवर्ती पंचनदी पार करने के लिए नौका में बैठे उस समय अन्धेरी रात्रि, जोरों की वर्षा, भयंकर तूफान हो जाने के कारण नौका खतरे में आ गई। तब उन्होंने अपने एक मात्र इष्ट दादा साहब का ध्यान किया। फलस्वरूप तुरंत ही सूरिजी की देवात्मा ने सानिध्य कर संकट दूर किया। इसका उन्होंने स्वयं एक स्तवन रचकर उल्लेख किया है।

आयो आयोरी समरन्तां दादो जी आयो
संकट देख सेवक कुं सद्गुरू, देरावर तैं धायो ॥ स० ॥१॥
वरसे मेह नै रात अंधारी, वाय पिण सबलौ वायौ।
पंच नदी हम बैठे बेड़ी दरिये हो दादा दरिये चित्त डरायो
दादा उच्च भणी पहुंचावण आयो, खरतर संघ सवायो।
समयसुन्दर कहै कुशल २ गुरू परमानन्द सुख पायो ॥स०॥३॥

(३) इसी प्रकार वर्षा के अभाव में वृष्टि के लिए स्मरण करने पर तत्काल वर्षा हुई, इसके सम्बन्ध में भी कविवर ने "मांगो मेह वूठो तुरत" पद्य लिख कर सानिध्य स्वीकार किया है।

(४) कविवर धर्मवर्द्धन ने भी अपने श्रीजिनकुशलसूरिजी के स्तवनों में डूबती हुई नौका तिराने का कई जगह उल्लेख किया है।

(५) श्री जिनभक्तिसूरिजी कृत 'श्री जिनकुशलसूरि स्तवन में बीकानेर नरेश सुजाणसिंहजी की शत्रुओं से रक्षा करने का उल्लेख किया है।

परितख परचौ पामियौ, श्री बीकाण नरेश ।

सुजाणसिंह नरराज ने, अरिभय लियौ उबार ।।

(गुरुगुणरत्नावली पृ० ६२)

और भी कई चमत्कारों का उल्लेख महोपाध्याय रामलालजी गणि विरचित दादा साहब की पूजा व स्तवनादि में मिलता है।

आपके अलौकिक प्रभाव का ज्वलन्त उदाहरण इतना ही देना पर्याप्त होगा कि सैकड़ों स्तुतियां, स्तोत्र, अष्टक, निसाणी, पद, छन्द, स्तवन एवं सैकड़ों गुरु-मन्दिर, चरणपादुकाएं, मूर्तियां आदि यत्र—तत्र उपलब्ध हैं। इतने अधिक स्तवन और स्मारक किसी भी अन्य आचार्य के नहीं हैं। आपको स्वगच्छ, परगच्छ, स्थानकवासी, तेरापन्थी आदि सबलोग भक्ति-भावपूर्वक मानते हैं। यों तो प्रसिद्ध प्रसिद्ध सभी ग्राम, नगरों, तीर्थों, मन्दिरों आदि में आपके चरणपादुकादि विद्यमान हैं पर हम पाठकों की जानकारी के लिए उनमें से थोड़े स्थानोंके संवतोल्लेख वाले स्मारकों की सूची नीचे देते हैं।

प्रतिष्ठा समय	स्मारक	स्थान	लेखप्राप्ति *
सं० १४८६ ज्ये० शु० ५	मूर्ति	आदिनाथ मन्दिर मालपुरा	†हरि
सं० १६२३ माघ वदि ५	पादुका	दादावाड़ी, नागौर	हरि
सं १६५२ ज्ये० शु० ५	,,	शीतल जिनालय रिणी	सं२४६०
स० १६५३ मि० सु०६	चरण स्तूप	दादावाड़ी पाटण	बीकानेर
स० १६५४ज्ये०शु०११ रवि	पादुका	विमलवसही शत्रुञ्जय	यु० प्र० जैन लेख संग्रह प्रस्तावना पृ० ७७
सं० १६५६ ज्ये०शु० १२ शनि	,,	सांगानेर	,, पृ० ७८
सं० १६६३वैं० शु० ६ शनि	स्तूप	दादावाड़ी, जामनगर	हरि
,, १६७५ वै० शु० १५	मूर्ति	खरतरवसही, शत्रुंजय	हरि
,, १६७५ मि०सु० १२	,,	लौद्रवपूर तीर्थ	सं (२८७६)
,, १६८२ ज्ये० शु० ३ गुरु०	,,	शत्रुञ्जय	हरि०
,, १६८२ मि० सु० ५	पादुका	दादावाड़ी, पटना	ना० ३३२
,, १६८८ बै० शु० १५	,,	गुणायाजी	ना० १७६
,, १७०२ मा० शु० १३ सो०	,,	गांवमन्दिर, पावापुरी	ना० १६८

* इसमें हरि = श्री जिनहरिसागरसूरिजी का अप्रकाशित लेख संग्रह, ना० = श्री पूरणचन्दजी नाहर के "जैन लेख संग्रह" के लेखाङ्क सं० = हमारा बीकानेरजैनलेख संग्रह और यु० प्र० जि० हमारे लिखे हुए युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि ग्रन्थ का संकेत समझना चाहिये।

† यह प्रतिमा अब दिल्ली—महरोली के बड़े दादाजी में शत्रुंजय रचना के मन्दिर में विराजमान है।

प्रतिष्ठा समय	स्मारक	स्थान	लेख प्राप्ति
सं० १७०८ वै० सु० ७ गु०	,, पादुका	महाजन	सं० २५१७
,, १७३७ चै० व० १	,,	नापासर	सं० २३३१
,, १८१६ आ० सु० १०	,,	लौद्रवाजी	सं० २८८४
,, १८२१ मा० शु० १५	,,	दादावाड़ी मुर्शिदावाद	ना० ६७
,, १८२१ वै० सु० २ रजतमय	,,	सुपार्श्वमन्दिर वीकानेर	सं० १७६०
,, १८३१ फा० शु० ७	,,	नोखा, पार्श्वजिनालय	सं० २२६६
,, १८४८ ज्ये० व० ८ बुध	,,	दिनाजपुर	ना० ६३३
१८५० वै० शु० ३ बृह०	,,	शांति मन्दिर, चुरू	सं० २४०४
,, १८५० वै० शु० १५ गुरु०	,,	वासुपुज्य मंदिर बीकानेर	सं० १३८५
,, १८५० मा० शु० ५	,,	दादावाड़ी, चूरू	सं० २४१७
,, १८५० मि० ब० १ सो०	,,	फर्रुखाबाद	हरि०
,, १८५६ वै० शु० ३ बुध	,,	चंपापुरी	ना० १६४
,, १८६२ माघ शु० ५	,,	जयपुर	हरि
,, १८६६ मा० कृ० ५	,,	दादावाडी, रतनगढ़	सं० २३५८
,, १८६७ आ० सु० ६ बुध	,,	कासमबाजार	ना० ८४
,, १८७० आ० सु० १०	,,	खरतरवसही शत्रुंजय	सं०
,, १८७१ वै० सु० ८ बुध	,,	छोटा दादाजी, दिल्ली	ना० ५२७
,, १८७५ मि० शु० ६ रवि	,,	मधुवन दादावाड़ी	ना० १८४१
,, १८७६ मा० शु ५	,,	हस्तिनापुर	हरि
,, १८७७ वै० शु० ५ चंद्र	,,	पटना	ना० ३२०
,, १८७९ वै० शु० ५ चंद्र	,,	,,	ना० ३२१

प्रतिष्ठा समय	स्मारक	स्थान	लेख प्राप्ति
सं० १८२८ वै० सु० ६	,,	(रजतमय) आदि० मं०	बी० सं १४८६
,, १८९५ वै० व० ७ रवि	,,	चंद्रप्रभ जिनालय, काल्लू	सं० २५११
,, १८९७ वै० सु० ३	,,	राजगढ	सं० २४३१
,, १८९१ आ० सु० ५	,,	देशनोक	सं० २२४१
,, १८९६	;,	दादावाडी सुजानगढ़	सं० २३७८
,, १८७७ वै० सु० १५	पादुका	अयोध्या	ना० १६५६
,, १८७९ फा० सु०४ शनि	,,	फैजाबाद	ना० १६७९
,, १८८२ द्वि० श्रा० व० १२ गुरु	,,	(जीर्णोद्धार) नागौर	हरि
" १८८६ मा० व० ५ बु	"	चिन्तामणिजी मं० बम्बई	सं०
,, १८८५ आषाढ़ वदि ५	,,	आबू तीर्थ	सं०
,, १८८८ मा० सु० ५	,,	चन्द्रावती	ना० १६८३
,, १८८७ आ० सुदी १०	,,	पार्श्व मन्दिर, जांगलू	सं २२५६
,, १९०४ मा० सु० १२	,,	दादावाडी लखनऊ	हरि
,, १९०३ फा० ५	,,	चंद्रप्रभ मं० बीदासर	बी०सं० २३६३
,, १९०८ चै० सु० १२ रवि		(जीर्णो०) दिल्ली	हरि
,, १९०९ आ० सु० १५	,,	आचार्योपाश्रय	बी०सं० २६०६
,, १९१० माघ सु० २ सो०	,,	लखनऊ	हरि
,, १९१० मा० सु० २	,,	गांव मन्दिर, पावापुरी	ना० १६६
,, १९१० मा० सु० २	,,	रत्नपुरी	ना० १६६८
,, १९११ आषा० व० ५	,,	दादावाड़ी सरदारशहर	सं० २३६९

प्रतिष्ठा समय	स्मारक	स्थान	लेखप्राप्ति
सं १९१२ फा० व० ७ गुरु	,,	दादावाड़ी केसरियाजी	ना० ६८६
,, १९१३ माघ शु० ५ शुक्र	,,	जौहरीबाग, लखनऊ	ना० १६३७
,, १९१३ माघसुदि५ ,,	पादुका ,,	शान्ति मन्दिर लखनऊ	हरि०
,, १९१३ ,,	,,	,, ,,	,,
,, १९१४ ज्ये० २	,,	हीरालालदेरासर ,,	ना०१६२२
,, १९१४ ज्ये० शु० २	,,		हरि०
,, १९१४ ,, ,,	,,		,,
,, १९१४ ,, ,,	,,		,,
,, १९१७ मा० सु० ५ शुक्र	,,	मधुवन दादावाड़ी व सुपार्श्वमं०	
,, १९१७ मा० कृ० ९ शनि	स्तूप	अमरसागर	ना० २५४२
,, १९१७ फा० व० ६	पादुका	सुरतगढ़	सं० २५२४
,, १९१९ वै० कृ० २	,,		हरि
,, १९२३ ज्ये० शु० ४ गुरु	,,	वालोतरा	सं०
,, १९२४ मा० शु० १३	,,	लखनऊ	हरि
,, १९२६ फा० सु० ७	,,	वराकड़ तीर्थ	सं०
,, १९२८ मा० शु० १२ गु०	पादुका	कानपुर हरि	,,
,, १९२९	,,	हस्तिनापुर	,,
,, १९३३ मा० शु० ३	,,	सुजानगढ़ पार्श्वजिना०	सं०२३७५
,, १९३६ ज्ये० सु० १३ सो०	,,	भागलपुर	हरि

प्रतिष्ठा समय	स्मारक	स्थान	लेखप्राप्ति
,, १९३६ फा० शु० ३	,,	लूणकरणसर	सं० २५०५
,, १९३८ आ० व० १३	,,	बड़ा मन्दिर कलकत्ता	सं०
,, १९३९ फा० व० ७ गु०	,,	जयपुर	हरि
,, १९३९ ,, ,,	,,	दादावाड़ी, विहार	ना० २३३
,, १९४० मि० व० ७	,, पादुका	कुंथुजिनालय, बीकानेर	सं०
,, १९४३ चै० सु० १३	,,	सूरप्रभ जिनालय, आगरा	
,, १९५० आसाढ़ शु० ८ शु०	,,	दादावाड़ी जयपुर	सं०
,, १९५७ ज्ये० शु० ११	,,	तेजपुर पार्श्वमन्दिर	
,, १९५५ पौ० शु० १५ गु०	,,	दादावाड़ी वनारस	हरि
,, १९६०	,,	ऋषभ मं० बीका०	सं० १५०१
,, १९६५ ज्ये० शु० १२ गु०	,,	दादावाड़ी मेड़तारोड	सं०
,, १९६५ ज्ये० सु० १३	,,	,, देशनोक	सं० २२५०
,, १९७० ज्ये० व० ८	,,	,, गंगाशहर	सं० २१७९
,, १९७२	,,	झझू	सं० २३२१
,, १९७३ वैं० व० ७	,,	लखनऊ	हरि
,, १९७५ वैं० सु० २	,,	रजतमय कुंथुजि०बी०	सं० २७०३
,, १९७६ आ० शु० ३ सो०	मूर्ति	हापुड़	हरि
,, १९७९ वैं० शु० ८	पादुका	,,	,,
,, १९७९ आ० शु० १ सो०	,,	कलकत्ता	ना० १००८

प्रतिष्ठा समय	स्मारक	स्थान	लेखप्राप्ति
सं० १९८० वै० सु० ११ गु०	,,	जेसलमेर	सं० २८१३
,, १९८७ ज्ये० शु० ५ रवि	,,	रेल दादाजी बीकानेर	सं०
,, १९८८	,,	कुंथजिनालय उदरामसर	सं० २२०६
,, १९८८ आ० शु० १२	,,	नाकोडा	सं०
,, १९८८ मा० शु० १० बु०	मूर्ति	सुगनजी उ० बी०	सं० १९७४
,, १९९३ ज्ये० ब० ८ गु०	पादुका	नया दादाजी बी०	सं० २९९७
,, १९९६ चै० सु० १०	,, पादुका	नाल जीर्णोद्धार	सं० २२८५
,, १९९७ ज्ये० सु० ५	मूर्ति ,,	गुरुमन्दिर बी०	सं० १९९८-९
,, २००२ मि० सु० १०	मूर्ति	महावीर जिनालय बी०	सं १७०८
,, २००५ ज्ये० सु० १०	चरण	महावीर ० उदरामसर	सं० २१९७

सतरहवीं शताब्दी के उपाध्याय ललितकीर्ति के शिष्य श्री राजहर्ष ने "श्री जिनकुशलसूरि अष्ठोत्तरशत थुभस्थान गर्भित स्तवन" *बनाया है। उसमें उस समय के निम्नोक्त स्थुंभ स्थानों के नाम दिये हैं :—

देरावर	आगरा	सांगानेर	साचोर
गढाला	पट्टण	विहार	सोवनगिरि
उच्च	अलवर	मालपुर	सिरोही

* यह स्तवन इसी पुस्तक के परिशिष्ट में प्रकाशित कर दिया है।

सिद्धपुर	अमरसर	जयतारण	नूतनपुर
फिरहीर	नौरंगावाद	किसनगढ	शत्रुञ्जय
जेसलमेर	नाडुलाई	राजगढ़	सूरत
जोधपुर	वर्द्धनपूर	चंपापुरी	गिरनार
नागौर	नवहर	रतलाम	दीवनगर
मेड़ता	उद्योतनपुर	समियाना	ईडर
देवलवाड़ा	अहमदावाद	सोजत	आसोप
खम्भात	डेरइ (गाजीखान)	खीमसर	महेवइ
पाटण	शेरगढ़	वाहड़मेर	गुन्दोच
पाली	फतैपुर	पुहकरण	सहारनपुर
दिल्ली	भटनेर	पालनपुर	सेत्रावा.
मंगलउर	फलोधी	चन्देरी	जैतपुर
वीरमपुर	मंडोवक	तोड़इ	बिलाड़ा
अंजार	मरोट	कुम्भलमेर	बड़लुन्दा
भुज	अमरकोट	रिणी	पीपाड़
मांडवी	सम्वल	सरसा	कापरहेड़ा.
महिमपुरी	कंवल	लुणकरणसर	वेलरा
लाहोर	देववर	खेजडलइ	वालरवा
भेहरइ	ग्वालेर	पचियाख	तिमरी
अजमेर	सिरवाड़ी	देवीखेडा	कुण्डकी

पूगल	सिरुंजइ	सांभर	रोहीठ
जंगल	विक्रमपुर	भूटइ	मुलतान
पूनासर	वड़ली	रायपूर	[हाजीखान डेरा]
डीडवाणा	वीजापुर	राधनपुर	[इसमाइल खानडेरा]

इनमें से कई स्थानों के स्तूप नष्ट हो चुके हैं और बहुत से स्थानों में नये भी बने हैं जिनमें से कई स्थान लेख सूची में आ गये हैं, बहुत से स्थानों के लेख भी हमें नहीं मिले।

कवि अमरसिन्धुर (१९वीं शती)के अपूर्णप्राप्त कुशल गुरु छंद में उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त निम्नोक्तस्थानों का उल्लेख और है।

अजीमगंज	चुरु	देवगढ़	वरहानपुर
मालापुर	आबू	जालोर	पाटलीपुर
भरुअच्छ	रंगपुर	उदयपुर	ढाका
वम्बई	भीनमाल	विशाला	काशी
तोरणपुर	वीकानेर	मिरजापुर	हुगलीपुर
गूढा	देवीकोट	वालोचर	मुंद्रा

सातवां प्रकरण

—:※※:—

ग्रन्थ रचना

स्वर्गीय गुरुदेव श्री जिनकुशलसूरिजी महाराज व्याकरण न्याय, साहित्य, अलङ्कार, नाटक, ज्योतिष, मंत्र-तंत्र छंद, तुरग पद, कोष्टकपूर्ण, शब्दालङ्कार और जटिल समस्याओं की पूर्ति में सिद्धहस्त प्रकांड विद्वान थे। यद्यपि आपश्री शासन प्रभावना के नाना कार्यों में व्यस्त रहने के कारण अधिक ग्रन्थ-निर्माण न कर सके थे और जो कुछ भी रचना की थीं उनमें से कितने ही स्तोत्रादि का उल्लेख आगे के प्रकरणों में किया जा चुका है, पर वे अब उपलब्ध नहीं हैं। जिन कृतियों का हमें पता लगा है उनका संक्षिप्त परिचय यहां देते हैं।

(१) चैत्यवन्दन कुलक वृत्ति — यह युगप्रधान श्री जिनदत्त-सूरिजी महाराज विरचित २७ गाथा के लघुकुलक पर ४००० श्लोक परिमाण विशद वृत्ति रची है। सूरिजी ने ग्रंथ के भावों को अनेक ग्रन्थों के प्रमाणों द्वारा पुष्ट एवं परिस्फुट किया ही है पर साथ ही साथ प्रासङ्गिक धर्म कथाओं को जोड़कर ग्रन्थ की शोभा में विशेष अभिवृद्धि कर दी है। कथाएं

सब श्लोक बद्ध अनुष्टुप छन्द में हैं। इनकी सूची श्लोक संख्या सहित यहां दी जाती है :—

१ सुगुरू कुगुरू विपये सिंह शृगाल कथा	श्लो०	४१
२ गीतार्थ गुरू विपये सर्पशीर्प पुच्छिका कथा	श्लो०	१६
३ गीतार्थ कुगुरू विपये वैद्यपुत्र कथा	श्लो०	२६
४ सासन प्रभावक सिद्धसेनसूरि कथा	श्लो०	१३०
५ श्रेणिक महाराज कथा	श्लो०	६४५
६ मङ्गल चैत्य कथा	श्लो०	१७
७ हिङ्गुशिव कथानकम्	श्लो०	२२
८ जमालि निन्हव कथा	श्लो०	६१
९ चैत्यवन्दन विषये धनदत्त श्रेष्ठी कथा	श्लो०	२८
१० नवकार फल विपये शिवकुमार कथा	श्लो०	४६
११ ,, ,, ,, श्रीमती कथा	श्लो०	३५
१२ ,, ,, ,, धरणेन्द्र कथा	श्लो०	५५
१३ ,, ,, ,, हुण्डिका यक्ष कथा	श्लो०	३७
१४ तप फल विषये नागदत्त कथा	श्लो०	५६
१५ सोदास राजकुमार कथा	श्लो०	४६
१६ रात्रिभोजन विषये सुमित्र ब्राह्मणी कथा	श्लो०	१२५
१७ अज्ञातफल विषये वंकचूल कथा	श्लो०	१८६
१८ विचलित रसाहार विषये धनपाल कथा	श्लो०	११५
१९ त्रसजीव रक्षा विपये चन्द्रराज कथा	श्लो०	६३
२० अलीक वाक्य परिहार विषये हंसराज कथा	श्लो०	७५

२१ अदत्तादान विरति विषये दत्त श्रेष्ठी कथा श्लो० १०३
२२ शील विषये सुदर्शन कथा श्लो० १८४
२३ परमार्हत आनन्द श्रावक कथा श्लो० ६२
२४ वज्रायुध कथा श्लो० १४५

प्रस्तुत ग्रंथ में निम्नोक्त ग्रंथों के नाम निर्देश सहित प्रमाण उद्धृत किए गये हैं :—

१ आवश्यक
२ आवश्यक निर्युक्ति
३ आवश्यक टीका
४ पञ्चलिङ्गी (जिनेश्वरसूरि)
५ उपदेशमाला
६ निशीथ भाष्य
७ ओघ निर्युक्ति
८ दशाश्रुतस्कंध भाष्य
९ महानिशीथ
१० योगशास्त्र
११ निशीथचूर्णि
१२ विवाह चूलिका
१३ निशीथसूत्र
१४ दशवैकालिक
१५ स्वधर्मीवात्सल्य कुलक (अभयदेवसूरिकृत)
१६ मिथ्यात्वकुलक संपूर्ण गा० २५ (पूर्वाचार्य कृत)

यह ग्रन्थ श्रीजिनदत्तसूरि ज्ञानभंडार, सूरत से प्रकाशित भी हो चुका है अतः विशेष जानने की इच्छा वो मूल ग्रंथ देखना चाहिए।

(२) श्रीजिनचन्द्रसूरि चतुःसप्ततिका—इसमें अपने गुरु कलिकाल केवली श्रीजिनचन्द्रसूरिजी महाराज के चरित्र का ऐतिहासिक वर्णन है। यह ग्रंथ प्राकृत भाषा की ७४ गाथाओं में है। जो परिशिष्ट में दिया जा रहा है।

(३) फलौधी पार्श्वस्तोत्रम् गा० ११

आदि—सकल भूतल भूषण शेखरम् ।

(४) पार्श्वनाथ स्तोत्रम् गा० ५

आदि—ॐ ह्रीं श्रीं धरणोरूगेन्द्र महिता ।

(५) स्तम्भन पार्श्व स्तोत्रम् गा० ६

आदि—श्री स्तम्भनाम्भोज विकाश मित्रम् ।

(६) शेरीषकालङ्कार पार्श्व स्तोत्रम् गा०५

आदि—श्री शेरीषक पत्तनाव निशिरः ।

(७) सिद्धक्षेत्र आदिजिन स्तवनम् गा०१६

आदि—श्रीविमलाचल विमला चूल ।

(८) वहुविह छन्दक शान्तिजिन स्तवनम् गा० ३२

आदि—श्री शान्तिनाह चरियं

(६) पार्श्व जिनस्तुति गा०४द्रें द्रेंकि धप मप ।

(१०) चतुर्विंशति जिननाम गर्भित स्तुति गा० ४

आदि—नाभेयाजित वासुपूज्य सुविधिं

(११) पंचमी तपः फल गर्भित नेमि जिनस्तुति श्लो० ४

आदि – श्री नेमिःपञ्च रूप त्रिदशपति कृत ०



आठवां प्रकरण

—०*०—

शिष्य परम्परा

सूरिजी के हस्तदीक्षित अनेक साधु साध्वियों के नाम पूर्व के प्रकरणों में आ चुके हैं उनमें से महोपाध्याय विनयप्रभ, सोमप्रभ विशेष उल्लेखनीय हैं, अतएव उनका एवं उनकी शिष्य परम्परा का थोड़ा परिचय देना आवश्यक है इसलिये यहां इस विषय में कुछ लिखते हैं ।

१ विनयप्रभ

आपकी दीक्षा सं० १३८२ मिती वैशाख शु० ५ को होने का उल्लेख पूर्व आ चुका है। आपको सं १३९४ और सं० १४१२ के बीच में उपाध्याय पद मिला ज्ञात होता है। आप बहुत अच्छे विद्वान थे, आपकी कृतियों की सूची इस प्रकार है :—

१ नरवर्म चरित्र—सं० १४१२ कार्तिकपूर्णिमाके दिन खंभात में यह ग्रंथ रचा गया इसकी तत्कालीन लिखी हुई १० पत्रोंकी एक प्रति भावहर्षीय भण्डार, बालोतरा में हमारे अवलोकनमें आई, उसमें ४९४ श्लोक हैं। अन्त में लिखा है कि "संवत् १४१२ वर्षे

श्री विनयप्रभोपाध्यायैः श्री स्तम्भपुरेस्थितैः सम्यक्क (त्तव) सारा चक्रेहि नरवर्म नृप कथाः"। इस ग्रन्थ को पंडित हीरालाल हंसराज, जामनगर वाले ने प्रकाशित किया है पर उसमें कर्त्ता के विपय में कुछ भी उल्लेख नहीं है।

२ गौतमरास – सं० १४१२ मिती कार्तिक सुदि १ को खंभात में देशी भापा में रचा गया है। इसकी रचना बड़ी ही लालित्यपूर्ण और प्रासाद गुण युक्त है। यह रास अत्यन्त प्रसिद्ध और अनेक ग्रन्थों में छप चुका है अतएव इसका विशेप परिचय देना आवश्यक नहीं समझते। इसके कर्त्ता के सम्बन्ध में कइयों ने विजयभद्र और उदयवन्त लिखने की भूल की है पर हमें उपलब्ध सं० १४३० की प्रति से इसके कर्त्ता निर्विवाद रूप से आप ही प्रमाणित होते हैं। यह रास ४५ गाथाओंमें है। कहा जाता है कि इसकी रचना उपाध्यायजी ने अपने भाई के दारिद्र निवारणार्थ की थी।

सं० १४३० की लिखी हुई प्रति तथा आगरा वाली प्रति में आपकी निम्नोक्त रचनाएं हैं :—

३ महावीर स्तवन गा० २४

आदि — सानन्द नम्र सुर कोटि किरीट पीठ।

४ वीतराग स्तवन गा० २५ आदि—देविन्द नागिन्द नरिन्दचंद

५ ऋषभ स्तवन गा० २६ आदि — विमलशैल सिरो मुकुटायतम्।

६ शान्तिस्तवन गा० १६

आदि-सद्ज्ञान भानु हत मोहतमो वितानकं।

७ तीर्थयात्रा स्तवन गा० ४१

आदि —महानन्द महानन्द महानन्द विधायकान्।

८ चतुर्विंशति जिन स्तवन गा० २६

आदि — मोह महाभड़ भय महण रिसह।

उपाध्यायजी के शिष्य विजयतिलकजी रचित कर्मग्रन्थ विचार गर्भित शत्रुञ्जय स्तव गा० २१ का सुप्रसिद्ध है। इस पर कितने ही विद्वानों के टब्बे, टीका आदि उपलब्ध है। षष्ठिशतक वृत्ति कर्त्ता तपोरत्न, गुणरत्न ने इन्हें अपना विद्यागुरु लिखा है।

उ० श्री विजयतिलकजी के शिष्यों में मुनिशेखर और क्षेमकीर्ति प्रसिद्ध थे, इनका उल्लेख भी षष्ठिशतकवृत्ति में विद्यागुरू और व्रत गुरुके रूप में मिलता है। वाचक क्षेमकीर्ति का शिष्य परिवार बहुत विशाल था। कहा जाता है कि इन्होंने ५०० धाड़वी या बराती लोगों को एक साथ दीक्षा दी थी जिससे इनकी क्षेमधाड़ या क्षेमकीर्त्ति शाखा प्रसिद्ध हुई। हमें इनके शिष्यों में से १ मोदराज २ तपोरत्न ३ गुणरत्न और ४ क्षेमहंस नामक चार शिष्यों का ही पता मिला है, क्षेमकीर्तिजी की परम्परा में बहुत से विद्वान हुए, अब भी आपकी परम्परा विद्यमान है।

इस शाखा के कतिपय प्रसिद्ध ग्रन्थकारों का यहां निर्देश किया जाता है।

१ तपोरत्न, गुणरत्न षष्ठिशतकवृत्ति कर्त्ता। यह वृत्ति सं० १५०१ में रची हुई है। श्रीजिनभद्रसूरिजी ने इसका संशोधन किया था।

२ महोपाध्याय जयसोम—देखें युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि पृ० १९७
३ महोपाध्याय गुणविनय — ,, ,, ,, २००

ये सतरहवीं शताब्दी के प्रकाण्ड विद्वान थे। उक्त पुस्तक में उल्लिखित ग्रन्थों के अतिरिक्त और भी बहुत सी कृतियां उपलब्ध हुई हैं इनके विषय में स्वतन्त्र लिखा जायगा।

४ मतिकीर्ति —देखें युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि पृ० २०२
५ विद्याकीर्ति ,, ,, ,, पृ० ३१२
६ लावण्यकीर्ति ,, ,, ,, ,, २९९
७ रत्नलाभ ,, जैन गूर्जर कविओ भा० ३
८ कनकविलास ,, युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि पृ० २०३
९ हंसप्रमोद ,, ,, ,, ,, २०३
१० चारुदत्त ,, ,, ,, ,, २०४
११ कनकनिधान ,, ,, ,, ,, २०४
१२ पुण्यकीर्ति ,, ,, ,, ,, २०४
१३ लब्धिचन्द्र ,, ,, ,, ,, ३१३
१४ श्रीसार ,, ,, ,, ,, २०७
१५ हेमनन्दन ,, ,, ,, ,, २०६
१६ सहजकीर्ति ,, ,, ,, ,, २०६
१७ यतीन्द्र ,, ,, ,, ,, २०८

१८ नन्दलाल देखो जैन सिद्धान्त भास्कर में हमारा लेख
१६ विनयमेरु—देखो युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि पृ२१०,३१५
२० जिनहर्ष देखें जैन गु० क० भा० २
२१ लाभवर्द्धन देखें जै० गु०क० भा० २
२२ रामविजय (रूपचंद्र) देखें जै० गु० क० भा० ३
२३ शिवचन्द्र देखें जै० गु० क० भा० ३
२४ रामचन्द्र १ देखें जै० गु० क० भा०३
२५ लक्ष्मीवल्लभ देखें जै० गु० क० भा० २
२६ सिंहा देखें जै० गु० क० भा० ३
२७ भुवनकीर्ति देखें जै० गु० क० भा० १
२८ मतिकुशल देखें जै० गु० क०भा० २
२९ यशोवर्द्धन देखें जै० गु० क० भा० २
३० रत्नविमल देखें जैन गुर्जर कविओ भा० ३
३१ अमरसिन्धुर २ देखें जै० गु० क० भा० ३
३२ महो० रामलालजी—बीकानेर में अच्छे विद्वान और वैद्य हुए हैं।

इन सब विद्वानों की परम्परा के कई वंशवृक्ष और ग्रन्थ सूची हमारे संग्रह में विद्यमान हैं पर स्थानाभाव और विषयान्तर हो जाने के कारण यहां नहीं दिया गया है।

---

(१) इनके शिष्य उदयराज शि० नेमचन्द्र शि० श्यामलाल जयपुर में थे।

(२) इनकी कृतियों का संग्रह हमने सम्पादित कर बम्बई के श्री चिन्तामणिजी के मन्दिर से प्रकाशित कर दिया है।

२ सोमप्रभ

पालनपुर के माल्हू रुद्रपाल की भार्या धारलदेवी के कुक्षी से सं० १३७५ में आपका जन्म हुआ। आपका जन्म नाम समर था। एक बार जिनकुशलसूरिजी ने पालनपुर पधारकर समराकुमार के शुभ लक्षणों को देख कर उसके पिता को उसे दीक्षित करने का उपदेश देकर भीमपल्ली पधारे। रुद्रपाल ने सपरिवार भीमपल्ली जाकर श्री जिनकुशलसूरिजी के पास समराकुमर और उसकी वहन कील्हू को सं०१३८२ वैशाख शु०५ के दिन दीक्षा दिलाई। समरा का नाम सोमप्रभ और कील्हू का नाम कमलश्री रखा। सं० १४०६ जेसलमेर में इन्हें वाचनाचार्य पद मिला। सं० १४१५ आषाढ़ शुक्ला १३ को खम्भात में तरुणप्रभाचार्यजी ने श्री जिनचन्द्रसूरिजी के पट्ट पर स्थापित किये। दिल्ली के श्रीमाल सा० रतना, पूना आदि ने पदोत्सव किया। इन्होंने पांच स्थानों में वड़ी प्रतिष्ठाएं, २४ शिष्य और १४ शिष्याओं को दीक्षित किया। अनेकों को संघपति, आचार्य, उपाध्याय वाचनाचार्यादि पदप्रदान किये। सं० १४३२ के भाद्रव कृष्ण ११ के दिन श्री लोकहिताचार्यजी को शिक्षा देकर स्वर्ग सिधारे। संघ ने दाहस्थल पर सुन्दर स्तूप वनाया। इनके पट्टधर जिनराजसूरिजी हुए, विशेष जानने के लिए हमारा ऐतिहासिक जैनकाव्य संग्रह देखना चाहिए।

३ श्रीजिनपद्मसूरि

आप प्रसिद्ध खीमड़ कुल के सेठ लक्ष्मीधर के पुत्र आंबा की धर्मपत्नी कीकी के पुत्र थे। सं० १३८४ माघ शुक्ला ५ को देराउर में सूरि महाराज के करकमलों से दीक्षित हुए। सं० १३९० ज्येष्ठ शुक्ला ६ को देरावर में श्रीतरुणप्रभसूरिजी ने सूरि पद दिया और सं० १३९० का चौमासा जेसलमेर किया जिसका विस्तृत वर्णन छट्ठे प्रकरण में कर चुके हैं। इसके पीछे का वर्णन जहां तक गुर्वावली में मिलता है, संक्षेप में यहां लिखते हैं :

सं० १३९१ पौष शु० १० के दिन लक्ष्मीमाला गणिनी को प्रवर्त्तनी पद दिया, मालारोपणादि उत्सव होने के बाद वाहड़मेर पधारे। वहांके राणा शिखरसिंह और श्रावक प्रतापसिंह, सातसिंह ने सन्मुख आकर प्रवेशोत्सव किया। वाहड़मेर में १० दिन ठहर कर सत्यपुर पधारे। यहां के राणा हरिपाल देव और सेठ नींवा ने प्रवेशोत्सव पूर्वक महावीर भगवान के दर्शन कराये। मिती माघ शुक्ला ६ को व्रत ग्रहण, मालारोपणादि उत्सव हुए। नयसागर व अभयसागर को दीक्षा दी। महीने से कुछ कम ठहर कर सेठ वीरदेवके आग्रह से आदित्यपाड़ा जाकर श्री पार्श्वनाथ प्रभु के दर्शन किए। यहां से पाटण पधारे, नवलखा देवानन्द के पुत्र अमरसिंह ने माघशुक्ला १३ को स्वागत पूर्वक नगर प्रवेश कराया। सूरिजी ने शान्तिनाथ प्रभु को वन्दन किया। मिती माघ शुक्ला १५ को जाल्हणके

पुत्र सेठतेजपालने सूरिजी से ऋषभदेव आदि पांचसौ विम्वों की प्रतिष्ठा करवाई। मिती फाल्गुन कृष्णा ६ को मालारोपण, सम्यक्त्व ग्रहणादि उत्सव हुए। सं० १३६२ मिगसर कृष्णा ६ को क्षुल्लकों की उपस्थापना और श्राविकाओं के मालाग्रहण का उत्सव हुआ।

सं० १३६३ कातिक महीने में तेजपाल कारित उत्सव सहित सूरिजी ने प्रथमोपधान वहन किया। श्री श्रीमाल मोखदेव श्रावक के जीरावल्ली मण्डन श्रीपार्श्वनाथ प्रभु के दर्शन का अभिग्रह था। अतः उसकी वीनतिसे फाल्गुण कृष्णा १० को पाटण से प्रस्थानकर नारउद्र गये। मंत्री गेहा के प्रवेशोत्सव पूर्वक दो दिन रह कर आशोटा पधारे वहां सेठ वीरदेव श्रावक ने राजा रुद्रनन्दन, राज० गोधा और सामन्तसिंह आदि राज्याधिकारी लोगों के सहित प्रवेशोत्सव किया। वहां से मार्ग में चोर डाकुओं के उपद्रव रहते हुए भी मोखदेव के सुप्रवन्ध से वूजद्री पधारे। सेठ छज्जल के कुलप्रदीप मोखदेव ने चौहान राजाउदयसिंह आदिके साथ सम्मुख जाकर प्रवेशोत्सव किया। इसी वर्ष राजा उदयसिंह के सहाय्य से मोखदेव ने राजसिंह पुत्र पुर्णसिंह, धनसिंह आदि अपने कुटुम्व के साथ श्री आबूतीर्थ यात्रार्थ पूज्यश्री से वीनति की। पूज्यश्री की स्वीकृति से सपादलक्ष देशीय तथा श्रीमालपुर के वीजा, देपाल, जिनदेव, सांगा आदि को कुंकुमपत्रिका भेजी मार्ग का भार सा० मूलराज, पद्मसिंह आदि को सौंपा गया। मोख-

देव ने ने चैत्रशु० ३ रविवार को तीर्थयात्रा के लिए बनाए हुए रथाकार शान्तिनाथप्रभु के नवीन देवालयकी वासक्षेप प्रतिष्ठा श्रीसूरिजी से करवाई। अठाई महोत्सव किया, चैत्र शुक्ला १५ को गूजरी के सा० काला, कीरतसिंह, होता, भोजा आदि विधि समुदाय तथा मंत्री ऊदा आदि के साथ संघ ने प्रयाण किया। श्रीजिनपद्मसूरिजी भी लब्धिनिधानोपाध्याय वाचक अमृतचन्द्र गणि आदि १५ साधु और जयर्द्धि महत्त-रादि ८ साध्वियां सहित संघके साथ पधारे। यात्री संघ पूर्व निमन्त्रित सपादलक्षीय संघ के साथ मिलकर नाणा तीर्थ गया। सा० सूरदेव आदि ने इन्द्रपद ग्रहण किया, मोखदेव ने श्री वीर प्रभु के मन्दिर में २००) चढ़ाए।

वहां से क्रमशः आबू जाकर समस्त संघ ने लूणगवसही, विमलवसही और तेजसिंह विहार के दर्शन किए, मोखदेवादि ने इन्द्रपद ग्रहण किए। महाध्वजारोपण, अवारित सत्र आदि महोत्सव किए। भगवान के भण्डार में ५००) रूपये समर्पण किए। वहां से प्रल्हादनपुर के स्तूप की श्रीजिनपतिसूरि मूर्तिको मुड्रस्थला ग्राम में संघ सहित वन्दन कर जीरावल्ली पधारे। वहां के भंडार में १५० की आमदनी हुई। वहां से सबलोग चन्द्रावती गए सा० झांझण, कूपादि ने स्वधर्मीवात्सल्यादि द्वारा संघ का बहुमान किया। श्री ऋषभदेव प्रभु के मन्दिर में २००) रूपये की आमदनी हुई।

चन्द्रावती से प्रस्थान कर आरासन में नेमिनाथ आदि पंचतीर्थी को वन्दन किया, वहां के भण्डार में संघ ने १५०) रूपये दिये। वहां से तारंगा जाकर श्रीकुमारपाल महाराज के बनवाये हुए अजितनाथप्रभु के मन्दिर का दर्शन किया। संघने २००) रुपये सफल किए। तारंगा से लौटकर संघ त्रिशृङ्ग आया। मन्त्री सांगणपुत्र मंडलीक, वयरसिंह, नेमा, कुमारपाल महीपाल आदि ने अपने राजा महीपाल के पुत्र महाराजा रामदेव को वीनति कर सरकारी वाजित्रों के साथ संघ का प्रवेश उत्सव किया। पूज्यश्री ने विस्तार से चैत्यप्रवाड़ी की। संघ ने पार्श्वनाथ प्रभु के सन्मुख १५० भेंट किए।

लघुवयस्क प्रतिभाशाली आचार्य श्रीजिनपद्मसूरिजी महाराज के गुणों की प्रशंसा सुनकर राजा रामदेव ने सेठ मोखदेव और मं० मण्डलीक के समक्ष सूरिजी के दर्शन करने की उत्कण्ठा वताई। दोनों श्रावकों के आग्रह से महोपाध्याय लब्धिनिधानादि के साथ सूरिजी राजसभामें पधारे। नरपतिने सिंहासन से उठकर स्वागत पूर्वक वन्दनाकर सूरिजी को पाटे-पर विराजने को कहा, पूज्यश्रीनेराजाको धर्मलाभरूपी आशीर्वाद दिया। मुनियों के विराजने पर श्री सारंगदेव महाराज के व्यासने अपने काव्य की व्याख्या की। उपाध्यायजी ने व्यास महोदय की रचना में क्रिया सम्बन्धी त्रुटियां वतलाइं इससे राजा रामदेव ने संतुष्ट होकर सूरिजी और उपाध्यायजी की बड़ी प्रशंसा की सूरिजी ने तत्काल काव्य निर्माण कर

राजा रामदेव का वर्णन किया। राजा साहब ने उस काव्य को विकट अक्षरोंमें लिखवाया, पूज्यश्रीने काव्यके अनेकों अर्थ कर राजाकोचमत्कृत किया।इसके बाद समस्त संघ चन्द्रावती होता हुआ बूजद्री लौट आया। सेठ मोखदेवने राजा उदयसिंह आदि के साथ प्रवेशोत्सव किया सूरिजी का चौमासा वहीं हुआ। प्राचीन गुर्वावलि में यहां तक का ही वर्णन है।

अन्यान्य पट्टावलियों में लिखा है कि जब आप सं० १३६० में बाहड़मेर पधारे, तब वहां के कुलधर श्रेष्ठी के कराये हुए श्री आदिनाथ और महावीर प्रभु के बड़े मन्दिर में दर्शनार्थ पधारे। प्रवेशद्वार छोटा और मूर्त्तिएं बड़ी देखकर बालस्वभावसे अपनी मातृभाषा सिन्धीमें उपाध्यायजी सेपूछा" वूहा णंढा वसही वड्डीअन्दरि किउं माणी आहइ!" तब प्रत्युत्तर में उपाध्यायजीने उसका समुचित समाधान किया। वहांसे विहार कर पाटण पधारे। सरस्वतीनदीके तटपर विश्राम करते हुए मनमें सोचने लगे कि प्रातःकाल पाटणका महान् संघ वन्दनार्थ आवेगा, मै उनके सामने चारुतया व्याख्यान न दे सका तो संघ क्या समझेगा! गुरू श्रीने मुझे क्या जानकर इतने विशालसंघ का नेतृत्व सौंपा? इस प्रकार चिन्ताग्रस्त श्रीजिनपद्मसूरिजी को सरस्वती देवी ने प्रत्यक्ष होकर वर दिया। प्रातःकाल में संघके वन्दनार्थ आने पर सरस्वतीकी कृपासे "अर्हन्तो भगवन्त इन्द्र महिता" काव्य द्वारा बहुत ही मनोहर शब्दोंमें व्याख्यान दिया। सारे संघ ने इस घटना से चमत्कृत होकर महाराज

तेह कन्हा भोजन सामग्री घृत तंदुल पिष्टकादिक गरथि करि लेवालागउ तिसइ श्रीऊधरण पणिदेव नइसंयोगि तिहांआव्यउ। ते श्रावकजाणी जुहार जुहार करी आपणइ गृहांगणि तेड़ि अंगोहलि करावी, भली पट्टकूल तणी धोवति वेवइ जणा पहिरी देहरइ देव पूजा करिवा नीकल्या छइ। तिसीइ उद्धरण तणी कलत्र पणि भला अपूर्व वस्त्र पहिरी ओढ़ी हाथ कचुलडी लेइ निकली। कचुलड़ी मांहे एकइ प्रदेसि कुसुम केसर……...…एकइ प्रदेशि …पांच सात एकइ प्रदेसि वि च्यार नवा सखर सुरंग चूनडी घाती कचुलड़ी लेइ ऊधण तणी कलत्र पणि देहरा भणी जायइ छइ…… देखि रामदेव साह नइ मनि विस्मय ऊपनउ। किस्यउ स्वरूप। देहरइ जातां घाटड़ी अनइ चूड़ा कांइ? मनि सांसइ उपनइ हुंतइ कोइ एक पूछ्यउ। एहड़ी घाटड़ी कांइ देहरइ लेइ जायइ छइ। तिणि कह्युँ। ए श्रीऊधरण नी कलत्र महापुण्यात्मा सर्वज्ञ तणा शासन नइ विषइ चतुर। देहरइ जातां कोइ श्राविका चूड़ा पखइ देहरा जाता आवतां देखइ दूबली दोहली तेहनइ चूड़ा पहिरावइ। चूनड़ी पखइ मिलइ तेहनइ चूनड़ी ओढ़ावइ। माडी दियइ तिणि कारणि ए भाग्य-वंत श्राविकासहुप्रकारे दीन दुस्थिततणइ कारणि,आधार दियइ इसी विवेकवंत श्राविका छइ। इसउ जाणी श्रीउद्धरण तणा घर नउ आचार देखी मन मांहि हर्ष करि हर्षित थयउ। मनि मान्यउ। जे श्रीजिनपतिसूरि वार्ता कही ते सत्य। संदेह भागउ। अनेराइ घर तणा मनुष्य देव गुरू विषइ भक्तिमंत।

सप्त क्षेत्रइ। दस. क्षेत्रइ। आपणउ वित्त वावता देखी श्रीरामदेव साहु उद्धरण वाहेत्री तणइ पगइ लागी। आपणपाउ जणाव्यउ। जेहुंताहरी परीक्षा करवा भणी आव्यउ हुंतउ। श्रीजिनपतिसूरि ताहरी वर्णना करइ। मइ जाणियउ ते किसउ छइ। तिणि कारणि हुं अत्र आव्यउ। तउ सांप्रत आज ताहरउ घर तणउ आचार दीठउ। मन संतोष पइठउ। संशय दूरि नाठउ। जिन शासन नइ विषइ सापुरूप रत्न हुयइ तउ ए वार्त्ता जुगती हिजि छइ। तउ धन्य अनइ ते श्री जिनपतिसूरि पणि धन्य हुं पिण धन्य। जे इसा साहमी तणउ मुख दीठउ। इसी परि आपणपउ धन्य मानतउहुंतउ भली परि श्री उद्धरण मोकलावी रामदेव साहु श्री अजयमेरि आपणइ नगरि आवी श्री जिनपतिसूरि वांदी नमस्कार करी खमाव्या। आपणउखेढ़ि गाम गयां तणउ वृत्तान्त कही खमत खामणा कीधा। इस श्री जिनपतिसूरिजी हुआ। अथ उद्धरण तणउ वृत्तान्त लिखियइ छइ। ऊधरण आगइ कोमल हुतउ। पछइ श्री ऊधरणि खेड़िनगर महा उतंग तोरण प्रसाद कराव्यउ संपूर्ण प्रसाद नीपनउ। तिवारइ प्रतिष्ठा तणउ मूहूर्त्त गिणाव्यउ कोमल आचार्य प्रतिष्ठा करिवा भणी तेड्या। ते आचार्य अनेरइ स्थानिक प्रतिष्ठा करिवा पहुंता। तिवारइ उद्धरण सचिन्त थयउ। समस्त सामग्री प्रतिष्ठा तणी तउमेलि हिव किम कीजियइ। तिवारइ श्री उद्धरण तणी कलत्र खरतरां नी दीकरी हुंती। तिणि कह्यउ श्रीजिनपतिसूरि कन्हां प्रतिष्ठा

करावउ। तिवार प्रतिष्ठा करावी मस्तकि वास वताव्या। खरतर हुआ।

'वारसए पणयाले, विक्कमसंवच्छराउ वइक्कंते।
ऊद्धरण केइ पमुहा, छाजहड़ा खरतरा जाया॥ १॥

अजे सीम उद्धरण छाजहड़ तणउ केइ खरतर हूअउ श्री उद्धरण मँहतानउ पुत्र कुलधर मंत्रीश्वर प्रवर्त्यउ तिणि कुलधरि श्री जिनेश्वरसूरि तणइ वारइ श्री वाहड़मेरि उत्तंग तोरण प्रसाद कराव्यउ। तेह तणइ वंशि श्री जिनभद्रसूरि सरीखा गुणवंत गुरू प्रवर्त्या॥ श्री॥

(हमारे संग्रह के एक प्राचीन पत्र से)

परिशिष्ट (ख)

श्री जिनकुशलसूरि कृति संग्रह

(१) श्रीजिनचन्द्र चतुःसप्ततिका

सिरि जिणचन्द मुणीसर,— पाए नमिउं तमम्मि रविपाए।
काहं गुण कण थवणं, निय सुगुरूणं गुणगुरूणं ॥ १ ॥
जइ जगजणे हविज्जा, परमाऊ ताणिय पवणमइकलिओ।
तहवि न तीरइ तुह गुण, —गण गणणे कहमहं थविओ ॥ २ ॥
तह वि पइ चित्त भत्ती, अचिंत चिंतामणि पसाधाओ।
पहविस्सइ महसत्ती, तुह गुण थुणणे किमच्छेरं ? ॥ ३ ॥
तुम्हाण थुत्ता हलं, पवराणं नराण जत्थ उप्पत्ती।
कित्ति पडागो रेहइ, सो वंसो भुवण भवणुवरिं ॥ ४ ॥
जत्थ पहूणं तुम्हा-ण तिहुयणत्ताण करण थवयरणं।
किं चुज्जं सो देसो विरक्खाओ मार वत्तित्ति ॥ ५ ॥
तुह ससिणे आणाथणं, जंमण महिमामिसेण जेणकयं।
तेण पसिद्धं जायं, सम्माणयणित्ति नामेणं ॥ ६ ॥
सिरि मंति देवराआ, जाउ जणउ पहूण तुम्हाणं।
कह मन्नहा सरीरे, जयंत कुमरुव्वरूवसिरि ॥ ७ ॥

भर रयण रयण गब्भा, कोमलदेवीय मंतिणि जणणी ।
वेय[४] विलोयण[२] तिहुयण,[३] ससि[१] मिय वरिसे तुहुपत्ती ॥ ८ ॥
विहि मग्ग सीस मेसो, भविस्सई महियलम्मि गुरूराओ ।
इय विहिणा विहिया तुह, उप्पत्ती मग्गसीसम्मि ॥ ९ ॥
जम्मो पहूण तुम्हाण, विसुद्ध पक्खाण सुद्ध पक्खंमि ।
तुह जम्म महिम पुन्ना, रित्ता वि चउत्थिया पुन्ना ॥ १० ॥
तुम्हाण नियपहूणं, सया पसन्नाण धिच्छिऊण दयं ।
जाया दिसा विभागा, पसन्नया हरसिया इव्व ॥ ११ ॥
तुह नीरयस्सगुरू कवि, वहु तारय मंगलस्स जम्मंमि ।
रय रहियं गुरू कवि वुह तारय मंगल जुयं गयणं ॥ १२ ॥
चन्द कुल भासयाणं सयल कल कलाव तिलयाणं ।
पिच्छिय उदयं तुम्हाण, धवलइ भुवणं करेहि ससी ॥ १३ ॥
जग उज्जोय कराणं, जग चक्खूणं च तुम्ह जम्मखणे ।
कर मिसेण रविणा, कोसुंभ धया दिसा सुकया ॥ १४ ॥
अंवे लच्छि सरस्सइ, नियलंबिदलेहिं कमल पत्तेहिं ।
वंदणमाला वंधह, जं जम्मो जुगवरस्स हुणा ॥ १५ ॥
जिण जम्मं व सुहयरं, जम्मं तुम्हाण जणिय आणन्दं ।
जह कस्सवि गेहंगणि, अवयरणं कप्परुक्खस्स ॥ १६ ॥
उज्जोयस्सइ एसो, कुमलमलं अम्ह खंभराउव्व ।
हय नाऊण पियरेहिं, नाम कयं खंभराउत्ति ॥ १७ ॥

तुह वालचन्द मस्सव, वाल वत्था विलोय मोयवरा।
तुम्हाण जुगवराणं, किं किं नवि होई सुहजणयं ॥ १८ ॥
तुह जह सरीर वुढढी, वढ्ढंति तहा तहा कला सुगुणा।
जह कप्पद्दुमपूलो, वच पट्टंति साहाइ ॥ १९ ॥
तुम्हाणं सम्पत्ते, नवमे वरिसे य जणिय जणहरिसे।
सिरि जिणपयोह जुगवर, देसणाघन जलहरो वुट्ठो ॥२०॥
तुम्हाण ऽरिकदेसो, हरिसंकुरपूर पूरिओ धणियं।
गय भवरविसंतावो, जाओ नेव्वे यफलाभिमुहो ॥ २१ ॥
सिरि जिणपवोह जुगवर, पाए गहिऊण विन्नवइ कुमरो।
दाऊण दिक्ख तरिणीं, नित्थारह भव समुदाओ ॥ २२ ॥
युगसिहि भुवणिंदु मिये, वरिसे जिट्ठस्स सुद्ध तइयाए।
वयनिय पयसिरि जुग्गं, जाणित्ता देइ दिक्खगुरू ॥ २३ ॥
एयंमि खेमकित्ती वित्थरिही वित्थरा सयल लोए।
इय विहियं तुह गुरुणा, अभिहाणं खेमकित्तित्ति ॥ २४ ॥
सिक्खा चामर जुयलं, गुरु सासण धवल छत्त सोहिल्लं।
सीलंग सहस जोह, पंच' महव्वय गय वरड्ढं ॥ २५ ॥
संजम सिरि गुरू रज्जं आणवज्जं सयलं दुढ्ढ गइ महणं।
गुरू राय माणपत्तं, भुत्तं तुमए जयमण्ण ॥ २६ ॥
गुणमणि विज्जा नइ जुय, अभिसेयविवेयवर समुद्दाओ।
पुरिसुत्तमेण तुमए, पत्ता पत्तेण विज्जसिरि ॥ २७ ॥
वागरण छन्द नाडय, पमाण सिद्धंतपमुह विज्जाओ।
लीणा तुम्ह सरीरे, जहा समुद्दे असंख नई ॥ २८ ॥

अहसिरि चरम जिणराम- कम कमल पवित्त विक्कमपुराओ ।
झाण बलेणं परिभा, विऊण निय आउ पज्जंतं ॥ २६ ॥
जुगवर नयनवुच्छव—पवरे जावालिपुरवरे पत्तो ।
सिरि जिणपवोह गुरुणो वंदिय गुरु विवुह कम कमला ॥३०॥
तत्थ सिरिवीर विहि चे -इयंमि सुरवइ विमाण तुल्लंमि ।
तेरहसय इगयाले, वइसाह सुद्ध तीयम्मि ॥ ३१ ॥
सिरि जिण पवोह गुरुणा, निय हत्थेणं सगच्छभारधुरा ।
गुण रयणाणं तुम्हाण, संठविया संवपच्चक्खं ॥ ३२ ॥
मंति कुल कमलदिणयर, नाणामइ रयण रोहण गिरिस्स ।
तुह सूरि मंत नासो, गुरुराएहिं कओ ठाणे ॥ ३३ ॥
जिण तुल्लरूव तिहुयण—आणिंदण चन्द चन्दिमा पडिम ।
सिरि जिणचन्द मुणीसर, इइ नामं देइ तुम्ह गुरु ॥ ३४ ॥
सेयंस कुमारेणं, अक्खयधारा दिन्नसिक्खुरसं ।
स पियामहस्स पुव्वं, अक्खय तीया तओ पव्वं ॥ ३५ ॥
अक्खयनाण निहीणं, दिणम्मितुम्हाण इत्थ पट्टमहो ।
संपइ वट्टइ पव्वं, अक्खय तीयत्ति विक्खाय ॥ ३६ ॥
तुह वरपत निवेसिय, सगच्छभर मंत सार सुह चित्तो ।
सिरि जिणपवोह सुगुरू, अणसण विहिणादिवंपत्तो ॥३७ ॥
गुण सुमगुरूणा गुरूणा, तुमए जण वंछियत्थ सुरतरुणा ।
गच्छ पहुत्तं पत्तं, जुत्त वित्थरिय साहेण॥ ३८ ॥
तुह विवुहरायपट्टाभिसेय समयंमि नंदि तूररवो ।
हरिसयरो विवुहाणं, सज्जो सघटा कलुरवुव्व ॥ ३६ ॥

पवयण माया अट्ठऊ, तुह अविहि चरमणि मंगलायारं।
नाण सिरि चरणसिरि, उत्तारणयं करंति मह ॥ ४० ॥
पढम अवत्थं सत्ते, नर सह ले, तुमंमि गुरुराए।
परिहवई नवि को विहु, जिय गयघड सोहपो एव ॥ ४१ ॥
विय हाहिवेण पूरिय, कामेणगंध अमिय हिट्टेण।
सव्वविये तुमएव्विय, अथो वियज्जायए पुत्तो ॥ ४२ ॥
तुह रूवसिरि सरूवं, उवमा ईयं मयूह सोहिल्लं।
किर पंचविंस, इयमं, जिणावयारं कहेइ जए ॥ ४३ ॥
नयरं नरवइणा जह, सग्गो सग्गाहिवेण जह भाई।
पासाओ विंवेण व, तुमए पहुणा तहा गच्छो ॥ ४४ ॥
मोहम्म सामियंसो, छत्तेण व सोहि हीउ गएण।
इय तुम्ह उत्तमंगं, छत्तागारं कयं विहिणा ॥ ४५ ॥
सव्वंग सुंदरंगे, बाहु सु साहं करंगुली पत्तं।
नहकिसलयंसि च फलं, सहकार तरुव्व तुह भाइ ॥ ४६ ॥
भालत्थलं विमालं, अट्ठमि चन्दोवमं सिरी निलयं।
पुराणसिरी कीडत्थं, कीडा ठाण कयं विहिणा ॥ ४७ ॥
तुह मुहचन्दमपुव्वं, विमल कल कला कलावनिव्वुदयं।
कयसयसिरि वासं, तमोहरं अमिय निज्झरणं ॥ ४८ ॥
कयजगगण आणंदं, गह निग्गहेऊसल जडिम हरं।
रयणियरोमं पिच्छिय, मुत्तं पत्तो जिओ भमइ ॥ ४९ ॥
निय बंधव निय सेवय, येरव ताराणये सणं विहिय।
लोयण दसण मिसेणं, सरिणा तुह सेवणाइ कए ॥ ५० ॥

भइणीव सिरि वाणी, चिट्ठइ तुह वयण कमल कुलतिलए।
सइ वेरे तुम्हाणं, अणण्ण माहप्प मिव जयई ॥ ५१ ॥
कलिकाल निविड कद्दम, उद्धरियसगच्छ सकड भारस्स।
वसह धवलस्स मंसल —खंध सिरि रेहए ठाणे ॥ ५२ ॥
कर कमले वसइसिरी, पासायच्छत्त चामरधयाई।
इय कर फरिसे तुम्हाण, तज्जोगो जायई नराण॥ ५३ ॥
हियय रयणायरे तुह गहिरिम गुरूए मई नई भरिए।
समया मिय आहारे, वसइ सिरि वर जिणा निच्चं ॥ ५४ ॥
पाया सुरतरू पाया, तुह विहिया विन्नुह सेविया विहिणा।
निय निम्मिय तिहुयण जण, मणइट्ठं दाऊकासेणा ॥ ५५ ॥
निरइ स एकाली तुह, साइ सायज्झाण नाण रूवाई।
दट्ठूण मिच्छदिट्ठी, न को वि इह विम्हिओ जाओ ॥ ५६ ॥
तुह देसणा रसायण-मणुदिवसं जे नरा अणुहवन्ति।
ते सम्मदिट्ठी वलिणो, लहंति अजरामरं ठाणं ॥ ५७ ॥
तुह चउहा धम्म कहा, चउ दुग्गइ चउकसाय निग्गहणं।
काउं जुगवं जुगवर, चउ जुगवासीण संजाया ॥ ५८ ॥
तुह मुहहिम सेलाओ, सरस्सई निस्सप्पवरा।
अक्खलिया अच्छेरा, मुत्ति सिरी सग्ग सुह जणया ॥ ५९ ॥
सिरि कन्नदेव सिरि जित्तसीह सिरि समरसीह रायाणो।
तुह पय पंकयछप्पय, लीलं कलयंति गुण लुद्धा ॥ ६० ॥
कय जुग जुग्गं सव्वं, कलिम्मि तुट्ठेण तुह कयं विहिणा।
कय जुग भावा दीसइं, जत्थ तुमं विहरसेनणं ॥ ६१ ॥

थिअ पइट्ठा दिक्खा, पयदावणपमुह पमुह किच्चेहं।
सुपसत्था तुहिहत्था, जयंमि न हवंति कस्सुत्थं ॥ ६२ ॥
सिरि सत्तुंजय रेवई, जिणवर गुरू तित्थपमुह तित्थेसु।
जत्ता जुगलमिसेण, पायादिव सिव करा जाया ॥ ६३ ॥
देसेसु गुज्जरत्ता, सुमारवत्ता सवायलक्खेसु।
सिंधुमरुत्थल वागड—ढिल्ली देसेसु य विहाण ॥ ६४ ॥
महि महिला वच्छत्थल, लच्छी जणया कया तए पहुणे।
महुरा गयउर जत्ता, भवरिउ जत्ता असुह चत्ता ॥ ६५ ॥
लद्धीए सिरि गोयम रूवाइ गुणेहिं वयरसामिगुरू
सीलेण थूलिभद्दो, पभावणाय सुहत्थी य ॥ ६६ ॥
निय आउय पज्जंतं, जाणित्ताऊण नाण औ तुमए।
भेरव रोरव विसमं आगामिय कालमसिवकरं ॥ ६७ ॥
नियसिस्साणं रायिं-द चंदसूरीण मइ पस्साणं।
निय पय जुग्गं सिक्खं, संघ समक्खं कहेऊणं ॥ ६८ ॥
कायव्व गुणपवरो, वाणारिय कुसलकित्ति गणिसिस्से।
जिणकुसलसूरि सुगुरु-त्ति नामपुव्वेव अम्ह पयं ॥ ६९ ॥
मिच्छा दुक्कड गयवर मारूढो भाव वज्ज सन्नाहो।
जिणचंद सुगुरू वीरो, अणसणखग्गेण हणिय रिऊ ॥ ७० ॥
रिउ मुणि सिहि ससि परिमिय, वच्छर आसाढ़ सुद्ध नवमीए।
पत्तो सुरवर लच्छी पुराउ सिरि कोसवाणाओ ॥ ७१ ॥
चन्द कुलमह दिवायर, रयणायर सुगुण पवर रयणेहिं।
वाणी मुहा सुहायर, नमो नमो तुज्झ जुगपवर ॥ ७२ ॥

मह तुह चरिय समुद्दं वाणी पाणी पहारिया पप्प।
घित्तूण गुणजललवं, पायउ भुवणं मया (प)त्तियं ॥ ७३ ॥
सिरि जिणकुसल गुरूहिं, जुगवर जिणचंद नियगुरू एवं।
परमाऊ भत्तीए, थुणिओ संघस्स दिसउ सिरिं ॥ ७४ ॥

॥ इति श्री जिणचन्द्रसूरि चतुः सप्ततिका समाप्ता ॥

---

२ श्री शांतिनाथ चरित्र

सिरिसंतिनाहचरियं, माणसपउमाय सव्वरसभरियं।
सत्थसियत्थयकलियं थुणामि सुद्धो विजिय अमियं ॥१॥
जोवि वाहाहिं चरमोयहिं लंघए, जोवि पाएहिं गयणंगणं लंघए
जोवि मणिचित्तु तारागणं सक्कए,
सोवि तुह चरियगुणकित्तणं सक्कए ॥२॥
तहावि गोसामि तुह प्पसाया, गो कामधेणू मइ दुज्जयस्सा।
मुहंगणे सव्व समीहियत्था, खीरस्स हेऊ वीसस्सई मे ॥३॥
तुहगुणपरिवारो मंतिओ कित्तिसारो,
अगणियसिरिजुत्तो जेमियं तत्थ पत्तो।
मह मुह विण वाणी मोहणी अप्पसत्था
वहु मुणिउं विहत्था जेमिउं नो समत्था ॥४॥

सवुद्धि लच्छी अणुसारओ मे, जेमिस्सइं केविवुह प्पसायओ।
पावुन्नओ होइ गिहाणुसारओ, गिहंन पाहुन्नणु सारयंजओ ॥५॥

सव्वट्ठ विमाण वितइं जुमुत्तु, सव्वट्ठ गुणेहिं वितन्नु चुक्क।
भद्दासिय सत्तमि भद्द रम्मि, संपत्तउ पट्टणि गयपुरंम्मि ॥६॥

सिर वीससेण भूवय गिहंमि अयरोयरि सरवए सिरि निहम्मि
उयन्नउ सामिउ रायहंस, दोपक्ख विसुद्ध कुलावयंसु ॥७॥

अवज्झाए पवत्तिय वप्पमाय, तुह महियाइ दिहि विजय माय।
तइं आसियमाया गूढगब्भ, नर रयण सुधारण रयण गब्भ ॥८॥

जंभारि निदेसिय तिरियजंभ, तुह ताय गेहि सेवहि अचंभ।
निखवइं कंचण रयण रुप्प, दट्ठु जणणसवुड्ढिय अणप्प ॥६॥

जिट्ठो मासाण जिट्ठो तुह जणण वयरसेय कल्लाण रोह।
सामा वी तेरसी सा तिहुयण पमयुज्जोयणाओन सामा॥
सव्वो सो विस्ससेणो तिजय गुण चमूदेव वित्थारणेणं।
पुत्ते जाए भिजाए तइसय मचिरा सग्गुणेहिं विरित्था ॥ १०॥

चलियासण छपन दिसिकुमारि आगच्छइ, सूयइ भवण वारि।
आयारिणि अप्पिणि सूइ कम्मु,
निम्माइं पसंसइ जणणि धम्मु ॥ ११ ॥

चलियासणु पढमिंदो जाणिय जिण जम्मु ओहिणा तत्तो।
जिण पडिरूवं ठाविय गहिय जिणं सुरगिरिं पत्तो ॥ १२ ॥

घंट सुग्घोस सद्देण दस सुरवरा,
दोय जोयस वरा वीस असुरेसरा।

आगया तत्थ वत्तीस वितरवरा,
कुणइ जिणजम्म अहिसेउ हरसुद्धरा ॥ १३ ॥
ईय तुह जम्मभिसेयं, काऊण ठवित्तु जणणि पासंमि ।
नंदीसर जत्ताए, पत्ता चउसट्ठिवि सुरिंदो ॥ १४ ॥
गब्भठिएण विहिया असिवोवसंती,
सिंधुट्ठिएणरविणुव्व तमो विसंती ।
नामग्गमंत ग्रहणेण करेसि संती,
लोए जओ तुह अओ अभिहाणु संती ॥ १५ ॥
कुमरत्ते पणवीसं वास सहस्सा निवित्त विक्कित्ते ।
वत्ते नव निहिओ गुण निहणो तुह हवइ ठाणे ॥ १६ ॥
नर रयणगु गणाहिव चउदस रयणाहिवत्तु तुह ठाणे ।
गय हय रहाण चुलसी लक्खा लक्खाय गुण चक्क ॥ १७ ॥
पायक्क गाम गामाण छन्नउइ कोडीओय पत्तेयं ।
गामागर नगराई गणाण का तुह विजय पहुणो ॥ १८ ॥
जक्खा सोलस सहसा वत्तीस सहस्स मउडवद्धाय ।
चउसट्ठि सहस्स रमणी सेवइ तुह तिहुयणप्पहुणो ॥ १९ ॥
छक्खडं भरहं पसाहिउ चिरं भुंजित्तु लोगंतिए ।
विन्नंतो पडिहारणिव्व वरिसं दाऊण दोणं वरं ।
जिट्ठे किण्ह चउद्दसीइ दिवसे रायस्सहस्सन्निओ ।
निक्खंतो भरहस्सिरं तिणमिवं चिवासहस्सं वए (१) ॥ २० ॥

नाणेहिं तिहिं संजूओय गिहवासं जाव दिक्खक्खणे,
उप्पन्नं मणपज्जवं तुह सुमित्त त्तालए पारणं;
वीयन्हे तुह पोस सुद्ध नवमीए वच्छरे केवलं ।
किच्चा घाइ स कम्म घाय ममलं छट्ठेण दीवोज्जलं ॥ २१ ॥

देव विरयइं देव विरयइं तुह समोसरणु ।
भवभीय भवियह सरणु रयण कणय रयणह पयारिण ॥
संसार सायर वहणु पोय वाहु जिण तत्थ संडणु,
सव्वह भासणुसारणय जोयण गामिणि वाणि;
वारह परिसह संसए उम्मूलय वक्खाणि ॥ २२ ॥

धम्मु पभणइ धम्मु पभणइ पढमु जिण वम्मु,
गुत्तीहिं समिईहिं समुदस पयारु सत्तरस संजमु;
चउजाम जंम भड़ हणिय काम काम नव तत्त उज्जमु ।
वीयउ सावगु धम्मु तहिं वारस वय सिरि रम्मु ।
दाणं सील तव भावणिहिं पालव कय सिव सम्मु ॥ २३ ॥

छत्तीसं गणहारिणो तुह गुणा वासट्ठि साहस्सिओ,
साहूणं तह साहुणी चउसए णूणाय सा वोहिया;
दोलक्खा नवई सहस्स सहिया सुस्सावगाणं तहा ।
लक्खातिन्नि सुसावियाण नवई संख सहस्साहिया ॥ २४ ॥

ईय चउविह संघं ठावइत्ती जिणत्तो ।
तइं जह चउरंगाणीउ चक्कित्ता पत्ते ॥
जहमुईय सहीओ चक्कितित्थस्सिरीओ ।
तइं रसइ सुपत्तो पुन्नपत्तो कमेण ॥ २५ ॥

सव्वाउ लक्खं वरिसाणु सम्मं, संपालिऊण खविऊण कम्मं ।
मासोववासेहिं नवेहिं साहू, सएहिं जिट्ठासिय तेरसीए ॥२६॥
मुत्तिकन्ना विवाहोतए पाविओ, केवलन्नाण संमत्त संभाविओ
जोइ सोहाइ काओ वलुल्लालओ,
निच्च सुक्खालओ दंसणुज्जालओ ॥ २७ ॥

जइवि पत्तउ जइवि पत्तउ लोय अग्गंमि,
आलोइय आलोयणिण सव्वभाव तेलुक्क संठिय;
इगवीस गुण जुत्त तणु सिद्ध बुद्ध सुद्धप्प संठिय ।
तहवि तमच्चइं जे थुणइं झायइं ताण नराण ।
कुणइ सुहुज्झलु सुगइ फलु ईयर फं (पू?) ईयराण ॥ २८ ॥

अहव नहचइ अहव नहचइ कोवि विवुहोवि,
वि-सुवि सुरगुरुविदिव्व गुरु विसम सत्थ पारगु;
तुह निरुवम अइसइ परम महिम भरस पाथोहि पारगु ।
जह तारागणु संगणिउ जह गयणं गणियं तु ।
न मुणिय जह गय समुजीव भव परियट्टणु पज्जंतु ॥ २६ ॥

कोहाईणं रिऊणं भवदण गहाण निच्च मुदं जि ओहं,
तम्हा किच्चा पसायं वयण वल मलं देहि सद्धम्म धम्मं;
दीव च्चारित्त सत्थं रिउहणणखमा सक्खमाओ फरीओ ।
जेणाहं किंकरोते अरि विजयसिरिं सामिणो दंसयामि ॥ ३० ॥
सोहं मग्गो भवेयं भव रवि तविऊ वाणि पीयूस कुंडे,
निस्सेमे चित्तरोहे नवनिहि वयणुत्ता पयत्था वसं तु;
पाया आइच्चपाया तुह मह तिमिरु मूलणाए हवंतु ।

धम्मा रामा चउद्धा सुर रयण तवे धेणु कुंभा फलंतु ॥३१॥
ईयतुह चरियं सन्देसिउं सप्पसंसं,
जिणकुशल कयासं पत्त किंत्ति प्पयासं
इय मय कुसलंसं तेण नाण प्पहासं ।
भव मणु तिजए संसेवएयं जिणेसं ॥ ३२ ॥

॥ इति श्रीशांतिनाथ चरित्रम् समाप्तम् ॥

श्री स्तंभनक पार्श्वनाथ स्तवनम्

श्री स्तंभनांभोज विकास मित्रं, स्तवीमि पार्श्वं विलसच्चरित्रम्
सल्लोक कोक प्रमदैक पात्रं, तमोविजैत्रं महसा पवित्रम् ॥ १ ॥
सेढ़ी नद्युपकंठ खाखर पलास श्वेत धेनुक्षरन्
क्षीरस्नापित पुण्य संगत जिन श्री देवताज्ञापितः
श्रीद्वात्रिंशकया स्फुटं प्रकटितः श्रीस्तंभनेस्थापितः
श्रीपार्श्वोभयदेवइभ्य भयदेवेनांग लक्ष्मी कृते ॥ २ ॥
स्वभावचापल्य रसाश्रितायाः श्रियो भवेत् स्तंभनतांगभाजां ।
त्वत्पाद चिंतामणि सेवयाऽत्र श्रीस्तंभनेति प्रथितंसुतीर्थं ॥३॥

श्रीसिद्धक्षेत्रालंकार श्री आदिनाथ देव स्तोत्रं

—:(ॐ):—

विमलाचल विमलाचल चूला चूलामणिं महोविपणिं
प्रथमं श्रीजिननाथं स्तवीमि भक्त्या स्वशक्त्याच ॥१॥
त्वत्सेवया पूर्व महर्षि कोटाद्यो जयंतिस्म समस्त शत्रु
शत्रुञ्जयत्वंमकास चेति वाक्याच्छत्रुञ्जयेति प्रथितं सुतीर्थं ॥२॥
अर्हद्बिम्ब कदंब हंस पटला पुण्योर्मि माला कुला
संसारोरुमरुस्थल प्रविलस श्वेदापनोदामला ।
श्रीशत्रुंजय शैल तीर्थ सरसी प्रासाद पद्मोज्वला ।
सल्लोकोमृतदायिका विजयते संवच्छर श्रीकला ॥३॥
चिन्तामणि प्रमुख मुख्य पदार्थ जैत्र-
स्त्वत्पादरेणु रण कोपि महो महिष्टः ।
यत्सेवया तनुभृतांस्वमनोति गाः स्युः
स्वर्गापवर्ग सुख सर्ग जिनादि लक्ष्म्यः ॥४॥
यत्तीर्थं वृषभ प्रभु प्रभृतिभिः पादैः पवित्रीकृतं
सिद्धि श्रीप्रियमेलकत्व विधिना श्री पुंडरीकेन च
यत्तीर्थं श्रित जंतु संहति भवा कूपार पारीणता
सेतुः श्रायस सौख्य हेतुरपरं तीर्थंकथंतत्समं ॥५॥
दृष्टेयस्मिन् दृष्ट ए वात्र मेरु दृष्टियत्राष्टापदाद्रिः प्रदृष्टः
श्री संमेतोयत्र दृष्टे च दृष्टेस्तीर्थे दृष्टेयत्र किं किं न दृष्टं ॥६॥
नाभेयादिम पुंडरीक गणभृच्छ्रीसिद्धिविश्राणियत्
यत्स सौरभ पुंडरीक सदृशं भव्यालि संकर्षणे

यत्संसेवक कर्महस्तिहनने श्रीपुंडरीकायते ।
यस्येतीव बभूव तू नम -वृथा श्रीपुंडरीकस्तथा ॥६॥
संसारापारवारां निधिपतित नृभिर्भाग्यभंग्यात्रलब्धं
तीर्थं शत्रुञ्जयाख्यं प्रवहणसदृशं, पुण्यपण्यप्रपूर्णम् ॥ ७ ॥
ज्योतिर्जाग्रत्समग्राग्रिम पथकथन व्यग्र निर्यामकाग्र्यः
श्रीमन्नाभ्यंगजन्मा शिवपथ
पथिकान् वः सपायाद पायात्॥ ८ ॥
क्षेत्रोत्र चित्र फलसद्धिविधान पात्रे
-सत्पात्रदानसुतपोमुख बीजसुप्तं
औपम्यमुक्त फलसिद्धिमुपैति सिद्धि
क्षेत्रप्रसिद्धिमितियद्भुवने बभारा ॥ ६ ॥
नित्योदितौ वियति संसृतिनाश हेतू
लोकत्रयांतरतमः प्रतिघाति पादौ ।
नाभेय बिंबयुगनूतन पुष्पदंतौ
शत्रुञ्जयोदयगिरिर्विभरां बभूव ॥ १० ॥
यन्मूर्तिर्घनसारसारघटिता किं सौरभा भोगतः
किंवा गण्य वरेण्य पुण्यरचिता पुण्यप्रसूतित्वतः
किंवाक्षीरसरस्यदूर्म्मिदलिकैः कृतामलोच्छ्रित्वितः
कैरित्थं न वितर्क्यते कविवरै रौपम्यमानातिगा ॥ ११ ॥
सूर्याचंद्रमसौ परास्तमहसौयत्कास्य लक्ष्म्या ध्रुवं
सभ्या सभ्यदृशोत्थलेन भजतस्तच्छ्रीकृते यन्मुख
चिंतातीत मतप्रदान विजितारिंचतामणी संचया-

श्चक्रुर्यत्क रांह्रि युग्मलगनं प्रेंखन्नखमच्छदूमतः ॥ १२ ॥
दर्शं दर्शंत्वदीयं वदनहिमरुचिर्निमिलस्तांदृशेमे
पायं पायं सुधौघोपमवचनरस हर्षपूर्णौच कर्णौ
स्तावं स्तावं गुणालि नवरसरसिकांस्याद्रसज्ञा रसज्ञा
शेपाण्यंगानि यात्रा प्रणमन महतैः स्युः कृतार्था निसेद्य ॥१३॥
पिता माता भ्राता प्रभुरसि सुहृत्त्वहितं करोऽग
द्वंकारस्त्वं मेगुरुरशरणस्यासि शरणं ।
त्वयिप्राप्ते प्राप्ता नरसुरपति प्राज्यकमला
शिवश्री साम्राज्यं करतलगतं चाद्यसमभूत् ॥१४ ॥
ऊचुः केचिद्तत्ववुद्धिकलिता उच्चावचैर्जल्पनै
र्देवान् ब्रह्ममुकुन्दरुद्र सुगतानाराध्यता हेतवे
रागादिक्षयतोर्हदुत्तमरमयोग क्विचदात्मत्वत–
स्त्वामेचात्रभवंत उज्वलधियो देवाधिदेवं विदुः ॥ १५ ॥
विमल विमल शैलात्युच्चचूलावतंस
श्चिकुर निकर नीलां भोज संपूजितांसः
इतिनुतगुणलेशः अस्तकर्म्मप्रवेशः
प्रथयतु कुशलेशः सिद्धितामादिमेशः ॥ १६ ॥

॥ इति श्री सिद्धक्षेत्रालंकार श्रीआदिनाथ देव स्तोत्रम् ॥

श्री पार्श्वनाथ लघुस्तवन

त्रिभुवन जिनतारण गुण निधान। भुवनत्रय पावन सावधान।
मेचक कर दोपाकर पिधान।-
जय पार्श्व जिनेश्वर घन समान ॥१॥
उपसमरस निर्जित[1] वैर जात। नत[2]जनमत पूरण पारिजात।
जगदानंदन विदितावदात। जय वामानंदन जनित[3] सात ॥२॥
संसृति नीराकर वर तरंड। कामितदायक गुणमणि करंड।
जय वामा संभव देवदेव। देवासुर सारित[4] चरण सेव ॥ ३ ॥
सिव कमल विलास मराल बाल। मुनिमानस कीररसाल साल
रजनीकर-दल सुविसाल भाल।
जयपदकजनत सुर भूमि[5] पाल ॥४॥
कमठासुर कपट तपोनिवेस। वारण वारण दारण[6] मृगेस।
प्रगटीकृत सुकृत कृतीश[7]गेय। जय जगदादेय[8] सुनाम धेय ॥५॥
कल कज्जल ताल तमाल नील।
शिव पद सदनांगण विहित लील।
वामोदर रोहण धरण हीर। जय दुरभर धाराधर समीर ॥ ६ ॥
जय जय-जयकर जयराज पल्लि[9]। मुखमंडन गुणगण कुसमवल्लि।
श्रीजिनचंद्रसूरि गुरुनुत जिनेस। कुशलांबुज बोधनवासरेस[10] ७॥
[प्रति अभयजैन ग्रंथालय, न० (१) ६६१६ (२) ६६७६]

इतिश्री पार्श्वनाथ लघुस्तवनं

१ तर्जित। २ जिन, जिनमत। ३ जिनत। ४ सारति।
५ भौमि। ६ वारुणदारुण। ७ सुगेय। ८ धेय। ९ पल्य।
१० वासुरेण।

श्री पार्श्वनाथ स्तवन

ॐ ह्रीं श्रीधरणोरुगेन्द्रमहितः श्रीसप्त भोगोल्लसन्
माणिक्यावलिकांति संचयदुति[1] ध्वांतप्रपञ्च प्रभोः
श्रीवामोदर चारुपंकजवनी[2] मार्त्तंड विम्वायते।
...श्रेणि विमतिनो[3] विजयते श्रीपार्श्वनाथो जिनः ॥ १ ॥

ॐ कारी ह्रींकारी विस्फारैर्वर्ण मंत्र संघातैः।
हृत्पुण्डरीकपीठे स्मित[4] तरां पार्श्व तीर्थंकरं ॥ २ ॥

ध्यायंति स्फटिक श्वेत[5]मभि[6]प्रेतं परं पदं।
ह्रींकारी श्रीवशीकारी[7] चतुरं पार्श्व तीर्थपं ॥३॥

लभंते कमलां वृद्धि[8] वुद्धि सिद्धि सपुत्रतां[9]।
राज्यं[10] प्राज्यं कलत्रं च सम्यक्त्वं च सुनिर्म्मलं ॥ ४ ॥

निःशेष[13] मंत्राक्षर चारू[12] मंत्रं श्रीपार्श्व तीर्थेश्वरनामधेयं।
सदास्मरामः प्रमुदं महात्म्यः प्रीत्यानमामः कुशलंलभामः ॥५॥

॥ इति श्रीपार्श्वनाथ स्तवन ॥

---

१ रुत,दित । २ वने । ३ विमन्थनो । ४ स्मृति । ५ श्वैव, ६ मंभि प्रेत्य लभप्रीत । ७ वशीकारैह, वशीकरः । ८ रिद्धि । ९ सुपात्रतां, सुपुत्रताम्। १० प्राज्यं राज्यं पवित्रं च । १० निःस्सेसह, । यशैसह । १२ च्यार मंत्र्यं ।

श्री जिनकुशलसूरि विरचित

श्री चतुर्विंशति जिनस्तुति

नाभेयाजित वासुपूज्य सुविधि श्रेयांस पद्मप्रभान्
श्री शांतिशशिशंभवार सुमतीन्नेमिं नमिं शीतलम्
धर्म्मं पार्श्व सुपार्श्व वीर विमलानंतास्तथा सुव्रतम् ।
कुंथुं मल्ल्यभिनंदनौ नुत जिनानेतांश्चतुर्विंशतिम् ॥ १ ॥
जंबूद्वीप विदेह पुष्करवर द्वीपार्द्ध सद्धातकी ।
खण्डेषु प्रवेरषु ये च भरतेष्वेरावतेषुस्थिताः ।
नम्रा खंडलमण्डली मधुकरं श्रेणीभिरासेविता ।
स्तेषांतीर्थकृतामुदेभवतु पादारविंद द्वयी ॥ २ ॥
उत्पादादि पदत्रयी समभवन्मूलम्यभूवुर्द्दला ।
न्याचार प्रमुखांग कानिविपुलाः शाखाः प्रशाखानयाः ।
ज्ञानानि प्रसवोदयः फलमभूत्स्वर्गादि संपत्तयो ।
र्यस्यासौजयताजिनागममहावृक्षश्चिरंभूतले ॥ ३ ॥
गौरी सैरिभगामिनी पविधरा वज्रांकुशा शृङ्खला ।
ऽच्छुप्ताचक्रधरा फणींद्रमहिषी सर्व्वायुधाः रोहिणी ।
प्रज्ञप्तिर्मृगगामिनी द्रुमकरा काली महाकालिका ।
मानस्यासहषोडशापि कुशलान्येताः प्रयच्छं पुनः ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीचतुर्विंशति जिनस्तुतिः ॥
श्री जिनकुशलसूरि कृताः
(पत्र० १ फूलचन्द्रजी भावक संग्रह)

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

द्रें द्रें किद्रापम पधुधुगि धोंधों द्रसकि धरधप धोरवं ।
दोंदोंकि दोंदों दागुड़िदु दागुड़ि दुगिद्रमकि द्रणणण द्रेणवं ।
झिझि झेंकि झेंझें झणणरणरणनझकि नजजन सज्जनं ।
सुरशैल शिखरे भवतु सुखदं पारव जिनपति मज्जनं ॥ १ ॥
कठिरंगिनि थंगिनि कटथि गिद्रां धधकि धपनप पाटवं ।
गुण गुणण रणरण रणकि णेंणें गिणणि गुणगण गौरवं ।
झिझ झेंकि झेंझें झणण रणरण नझकि नजजन रज्जनं ।
कलयंति कमला कलित कलमल कमलनी समहं जिना ॥ २ ॥
ठिकि ठेंकि ठेंठें ठिहरि ठिहरकि ठिहरिपट्टा ताड्यते
तालोंकि लोंलों द्रेंखिद्रेंखिण द्रेंखिद्रेंखिण वाद्यते ।
उं उं कि उं उं कथंगि कथंगिनि थोंगिथोंगिन कलरवे ।
जिनमत्तमनतं महिम तनतामतनमतनत मज्झवे ॥ ३ ॥
खुंदांखु खुं दांखु खुड़दि खुदां खुड़िद दोंदों अंबरे ।
चचपटिचचपटि रणकि धूं णेंणें द्रणकि द्रेंद्रें डंबरे ।
नहिसुरगि मपध पनिध पमगर ससस्सखुरसर सेवता ।
जिननाद रंगे कुशलमनिशं दिशतु शाशन देवता ॥ ४ ॥

॥ इति स्तुति समाप्ता ॥

फलवर्द्धिका मंडन पार्श्व जिन स्तोत्र

सकलभूतल भूषण शेखरं, नतसुरासुर किंनर खेचरं ।
प्रणिदधे फलवर्धि पुरीश्वरं, सकल पार्श्वजिनं परमेश्वरम् ॥१॥
फलित एषममाद्य मनोरथः । कलित एव मया सुधियां पथः ।
वदति भाग्यवशादवलोकित, स्तदनुदेवभवानभिवर्णित ॥ २ ॥
मथितमोह महीपति शासनं, विकट संकट कोटि विनाशनं ।
शुभकरं महिमा गुणधारिणं श्रयत पार्श्वविभुं जिनचक्रिणम् ॥३॥
नतजगज्जनताहितकारकं, दुरित दुर्गति दुःखनिवारकं ।
सुरमणी रमणीयरमांदधिं, हृदि दधेतमहं महसांनधिं ॥ ४ ॥
चतुरचित्तचकोर मनोहरं, नयति यो निजलोचन गोचरं ।
रजनि जानि समं जिन ते मुखं, सलिल भेदसृतं प्रभवं सुखं ॥५॥
विनत पुण्य जनं वसुभासुरं, धन सुवर्ण धरं निधि सुंदरं ।
निशमनादपि पुण्यदरिद्रतां, गमयते तव पादयुगं सतां ॥ ६ ॥
कलियुगेप्यसुरैर्महिमामहा, प्रतिहता नतवेश सुखावहा ।
अपिनिदाघ ऋतौसवितुःकरै, र्विबुध सिंधुजलं किमशोषितं ॥७॥
शमयते तव देव वचोजलं, जनमनो वनवासिरुपानलं ।
गमयते श्रयतां सकलंमलं, जनयते शुभ बुद्धि लतामलं ॥८॥
हरति पुण्यधनं हृदयालयान्, मम सदैव सरागरि पूरयांत् ।
इति कृपापरतं परिपंथिनं, जहि विधेहि निजं सुखिनं जनं ॥ ६ ॥
हृदयसीश तवस्मृति धानतः, सुवचनं गुणगान विधानतः ।
वपुरुपासनतो भगवन्निति, त्रिकरणी विमला जनिमेखिला ॥१०॥
इति लता फलवर्द्धिपुरी पति, र्भविकलोक सु कोक दिवापतिः ।
दिशतु पार्श्वजिनोजगदुत्तमः, कुशलबुद्धि विलासमसौमम ॥११॥

इतिफलवर्द्धिकमंडन पार्श्वजिनस्तोत्र

[सं०१४६७ लि० संग्रह प्रति, पत्र २०४]

युगप्रधान श्रीजिनचंद्रसूरि शिष्य वा० समयराज गणि
गुम्फितावाचूरि सहितं श्रीजिनकुशलसूरि कृतं
एकादश यमकमय श्रीशत्रुञ्जय शृंगार सार

श्रीआदीश्वर स्तवनम्

सिद्धाचल श्रीललना ललामं मही महीयोमहिमाभिरामं ।
असार संसार पथोपरामं नवामि नाभेय जिनं निकामम् ॥ १ ॥

वृत्तिः—सिद्धाचलेत्यादि । अहं नाभेरपत्यं नाभेयः सचासौ जिननाभेय जिनमादिनाथं निकाममित्यर्थं नवामि स्तवीमि कीदृशं नाभेयजिनं सिद्धोपलक्षितोऽचलःसिद्धानां वाऽचलः शत्रुञ्जयस्तस्य श्रीर्लक्ष्मीरेव ललना स्त्री तस्याः शिरसि ललाम इव ललामस्तिलकस्तं ऽत्रलुप्त विशेष्योपमालंकारात् शिरसीति लभ्यते एवमन्यत्रापि ज्ञेयं पुनः कीदृशं मह्यां पृथिव्यां महीयसी गरीयसी महिमा तयाऽभिरामः मनोज्ञेयः स तं पुनःकीदृशं असारो योऽसौ सं सारोऽसार संसारस्तस्य पथो मार्गस्तस्मादु परमतीति असार पथ शब्दोऽकारन्तोप्यस्ति ॥ १ ॥

पुण्यप्रकाशं विभुनाभिजातं पुण्यप्रकाशं विभुनाभि जातं ।
स्तुवेन तं श्रीभरतेन देवं शत्रुञ्जये श्रीजिन[1] मारुदेवं ॥ २ ॥

(१) श्री भरतेन देवं ।

वृत्तिः—पुण्येत्यादि। अहं शत्रुंजये मरुदेवायाऽपत्य मारूदेवः श्रियायुक्तो जिनः श्रीजिनः सचासौमारुदेवश्च श्री जिनस्तंस्तुवे कीदृशं विभुश्चासौ नाभिश्च विभुनाभिस्तस्माज्जातः उत्पन्नस्तं पुनःकीदृशं पुण्य प्रकाशयतीति पुण्यस्तं पुनः पवित्रः प्रकाशस्तेजो यस्य स तं पुनःकीदृशं भावप्रधानोनिर्देशः विभुत्वेन जगत्त्रयसाम्राज्ये नाभितः स्थितिर्यस्यसतं अथवा विभुः सर्वव्यापीनो ज्ञानमर्थात्केवलज्ञानं तस्याभिजातः स्थिति-र्यत्र स तं पुनःकीदृशं नताः श्री भरते नो भरतचक्री देवाः सुराश्च यं प्रति स तं, अत्रकुत्रचिदर्शेस्तुवेन तं श्रीभरतेन देव मितिपाठंस्तथाचार्यमर्थः विभुनासमर्थन श्रीभरतेन चक्रिणा नतं नमस्कृतं पुनःकीदृशं अभिजातं कुलीनं प्राज्ञं वा पुनः कीदृशं दीव्यति क्रीड़ति परमानंदं पदे इति देवस्तं ॥ २ ॥

वसंतमुच्चैर्विमले परागे भव्यांगि[१] चेतोव वन संमदा गे।

नाभेय मीडे हरि मास[२] नागे ॥ ३ ॥

वृत्तिः—वसंतेत्यादि। अहंनाभेयमीडेस्तुवे कीदृशमामो रोगः स पवना नागःसर्पस्तत्र हरिर्गरूड़स्तंत किंकुर्वंतं उच्चैरुन्नते परागे प्रकृष्ट पर्वते वसन्तं निवसन्तं किं नाम्नि विमले विमल नाम्नि

(१) भय्यांगि, २ माम

इक्ष्वाकु वंशोदय शैल सूर राजस्व संचूरित पापपूर ।
सुवर्ण्ण नालीक समान वेर सुवर्ण्णनालीक समान वेर ॥७॥

वृत्तिः—इक्ष्वाकुवंशोदयेत्यादि। इक्ष्वाकु वंश एवोदयशैल उदयाचलस्तत्र सूरइवसूरस्तस्य सं० हे इक्ष्वाकु० राज स्वशोभस्व त्रिभुवने, इतिशेषः, कीदृशं संचूरितपाप पूरो येन स तस्य संसुवर्ण्ण तीलीकं स्वर्णकमलं तत्समानो वर्गो देहो यस्य स तस्य सं० सुवर्ण्ण वर्ण्णत्वात् सुष्टु शोभना वर्ण्णनाली स्तवन श्रेणिय स तस्य सं० हे समशत्रुमित्र समस्वभावाऽवकृष्ट वदथवाऽावद्विरंचिवन्नव इलाश्रीः स्तुति र्वा यस्य स तस्य सं० अथवा सुवण भव्य स्तवन अलीकमवद्यं स्यति खंडयतीति ऽलीक स स्तस्य सं० माने अहंकारे वो वज्रस्तत्समाइरा वाणीयस्य स तस्य सं ॥ ७ ॥

कल्याण देहे न विकाशमान कल्याण देहेन विकाश मान।
कल्याण देहेन विकाशमान कल्याणदेहेन विकास मान ॥८॥

वृत्तिः-कल्याणेत्यादि ॥ श्रितो विमुक्तइत्यादीहजगति हे इन् स्वामिन् त्वं शत्रुं द्रव्यभावभेदं जयजात्यैकवचनमत्र कल्याणं ददातीति कल्याणदस्तस्य स, हेकल्याण देहेन स्वर्ण्णशरीरेण विकासमाना शोभमाना विगतः काशो रोगविशेषो मानो ऽहंकारश्चयस्मात्स तस्य सं० कल्पो नीरोगोऽथवाकल्प प्रधानः अणः शव्दस्तस्यसं० देहउपचयो यस्मात्स तस्य सं०ई लक्ष्मीर्नविः स्तुतिः क सुखंतैश्चा समानोऽसदृशश्चस्तस्य सं० सर्वो-त्कृष्ट लक्ष्म्यादि सत्वात् कले कलहस्यऽाणः शव्द

सांघाति खंडयतीति यासा कल्याणदा ईहा वाञ्छा यस्य स तस्य सं० इतस्यसूर्यस्य विकाशः प्रकाशः प्रकाश स्तद्वन्मानं ज्ञानं यस्य स तस्य सं० ॥ ८ ॥

श्रितो विमुक्तः सहसाहसेन सुगोत्र शत्रुञ्जय पुण्यसत्र ।
श्रितो विमुक्तः सहसा हसेन सुगोत्र शत्रुञ्जय पुण्य सत्र[१] ॥ ९ ॥

वृत्तिः--श्रितोविमुक्तरित्यादि पुण्यस्य सत्रंदानं यस्य स तस्य सं० हे सुगोत्र सुवंशत्वं की सहसाबलेन श्रितः आश्रितः पुनः कीदृशं हसेन मोहनीयविशेषेण विमुक्तो रहितःत्वं कीदृश श्राणको जातो ऽस्या सौश्रितः सिद्धः कर्मभ्योनिर्मुक्तत्वात् त्वं कीदृशं विगता मुक्ता मौक्तिकानि यस्मात्स विमुक्तोमुक्तानामुपलक्षणमिहा किंचनत्वात् सहंसाहसेन वर्तते इतिसहसाहसाः साधवस्तेपामिनः स्वामी तस्य सं० अथवा सहनं सहः क्षमा सहसमान संर्थैवंता भ्यांयुक्त इनः स्वामी तस्य सं० सुगोत्रः सुपर्वताश्चासौ शत्रुञ्जयश्च सुगोत्र शत्रुञ्जयः स एव पुण्यं पवित्रं सत्रं गृहं यस्य स तस्य ॥ ६ ॥

सभाजितःसाधुगणैःसदायकः समाधिनाहं वृपभं महामितं ।
सभाजित साधुगणैः सदायकः समाविनाहं वृपभं महामितं॥१०॥

वृत्ति :—सभाजित इत्यादि । तं वृपभमादिदेवं समाधितासमाहित मनसाऽहं महोमि पूजयामि तं कं यएवयकः स्वामी सदा निरन्तर साधुगणैः । सभाजितः सेवितः पुनः कीदृशं साधुगणैः पण्डितवृन्दैः सभा सुजितः

१ शत्रु ।

सर्वोत्कृष्ट विद्यावत्त्वात् दायो दानं तस्य क उद्योतो दायकः सह दायकेन वर्त्तते इति सदायकः पुनः की० समं समस्तं आधिमानसव्यथां नह्यति वध्नातीति समाधिता ह्स्तं पुनः की० वृषेण धर्मेण भातीति वृषोऽथवा वृषं स्मरं भनक्तीतिवृषभस्तं महैरुत्सवैरमितो महामितस्त ॥ १० ॥

वृषध्वजेन प्रमुखेण राजितः सन्नंदन धर्म करो न वाणधः
वृषध्वजेन प्रमुखेण राजितः तन्नंदनो धर्मकरो न वाणधः ॥२१॥

वृत्ति :—वृषभध्वजेनेत्यादि। हेसन् विशेपज्ञस्त्वं नंद समृद्धो भवत्वं कीदृश प्रधुमुखेन प्रवरेण वृषभऽध्वजेन धर्म्मध्वजेन वृषभवाहनेन वाराजितः शोभितः पुनः कीदृशः वृषभध्वज ईश्वरः अया लक्ष्म्या इनः ईनः कृष्ण स्तत्प्रमुखा देवास्तेषां तेपुवा इनः पूज्योयः स तस्यसं० कामस्तस्याजिः संग्रामस्तं तस्यति खंडयतीति राजितः नो निपेधे धर्म्मोधनुः करेयस्य स नोधर्मकरः धर्म्मशव्दो धनुर्वाची यदुक्त "श्रीजिनदत्तसूरि पादैः धरति धर्म्मं सुवंश निष्पन्न मिति न वाणं दधातीति न वाणधोनशर धारको निष्कपायत्वात् कीदृशस्त्वं ? सं तः प्रधाना नंदनायस्य सः भरत चक्रवर्त्यादि शतपुत्रवत् त्वात् धर्म्मंकरोतीति धर्म्मकरःनो हिंसः सएव वाणो वृक्षः विशेषस्तं धूनयति कम्पयतीति न वाणधः ॥ ११ ॥

महोदयाया हित कोपमाय नवीन सामुद्र वराङ्ग भार ।
अनन्तसाराचल धीरवीर समाधिहारी भव दाव दाव ॥१२॥

वृत्तिः—महोदयेत्यादि । हे वीन विशिष्ट स्वामिन् विगत स्वामित्वात्वं महोदयाय महाभ्युदयाय भव कीदृश महो० आहिता स्थापिता कस्य सूर्य्यस्य उपमा यत्र स तस्मै पुनः कीदृश सामुद्र देह लक्षणं तेन वरमंगं विभर्त्तीति समुद्रस्तस्य सं० हे अनन्त सार अनन्तवीर्य ऽचल इव धीरो अचलः धीरस्तस्य संबोधने हे वीर ! सुभट, कर्म्मशत्रु जेतृत्वात् त्वं न समाधिहारीन समाधिहर्त्ता दां दान धर्म्मं वदतीति दाविदस्तस्य सं० ऽत्र जगति॥ १२ ॥

महोदयाया हितकोपमाय नवीन सामुद्र वरांग भार ।
अनन्तसाराचल धीरवीर समाधिहारी भव दाव दाव ॥१३॥

वृत्तिः—महोदयेत्यादि ॥ महोदयं मोक्षं अयते गच्छतीति महोदयान्तस्य सं० अहिते अनिष्टे कोपमाये यस्य स तस्य सं० अथवा अहितः शत्रुरूपः कोपः क्रोधस्तंमीनाति हिनस्तीति अहितास्तस्य सं० नवीनां सां लक्ष्मीं मुदं हर्षं राति ददातीति नवीन सामुद्रस्तस्य सं० वराङ्ग मस्तकं तस्य भा कान्तिस्तय राजतीति वराङ्गस्तस्य सं० अनन्ता मपरिमितामविनाशावा सारां प्रधानां अचलां स्थिरां धेयं रातीति अनंत० स्तस्य सं० हे वीर ! हे पूज्य ! यद्वाविगताइरा संसारे भ्रमणंयस्मात् सवीर स्तस्य सं० समेषां सर्वेषां आधिं हरतीति समाधिहारीत्वं भव संसारः स एव दावो वनं तत्र दावस्तस्य सं० ॥ १३ ॥

एवंस्तुतो यमकभेद परंपराभि
राभिर्मया विमल शैलपतिः पराभिः
आदीश्वरो दिशतु मे कुशलं विलासं [१]
वाचां विचक्षण चकोर सुधा सुकाशं ॥ १४ ॥

इति श्रीशत्रंजय शृंगारसार श्रीआदीश्वर स्तवन मेकादश यमकैः समर्थित मिदमकारि श्री जिनकुशलसूरिभिः ॥

वृत्ति :-[द्वाभ्यां सम्बन्ध महायमकमिदं]एवमित्यादि। एवममुना प्रकारेणाभिरेताभिर्यमक भेद परम्पराभिः पराभि प्रकृष्टाभिः-र्मया स्तुतः सन्नादीश्वरो मे मह्यं वाचां विलासं दिशतु ददातु कीदृश विलासं कुशलं प्रधानं कुशल हेतुत्वाद्वा कुशलस्तं कीदृशं आदीश्वरः विमलशैलः शत्रुञ्जयस्तस्यपतिः स्वामी कीदृश वि० विचक्षणाः पण्डितास्तै व चकोरस्तत्सन्तोपणे सुधांशुकाशश्चन्द्र तुल्यस्तं कुशलमिति भीमो भीमसेन इतिन्यान्या देतत्स्तवनम् श्रीजिनकुशलसूरिभिः कृतमिति लक्ष्यते श्रीगुरु सम्प्रदायात् ॥१४

इति श्रीशत्रुञ्जय शृंगारसार श्रीआदीश्वर स्तवनावचूरिः
कृता श्रीवृहखरतरगच्छाधिप श्रीजिनमाणिक्यसूरि
पट्टालंकार श्रीजिनचंद्रसूरिराज शिष्य समय
राज गणिना ॥ शुभंभवतुः ॥ ॥ श्री ॥
संवत् १७५७ वर्षे फागुण सुदि १२ चन्द्रवासरे लिखिता श्री
रिणी नगरे वा० नेमहर्ष गणिना ॥

---

१ सुभारं ।

परिशिष्ट (ग)



श्री जिनकुशलसूरि चतुष्पदिका

॥ ॐ श्रीमज्जिनकुशलसूरि सद्गुरुभ्यो नमः ॥

रिसह जिणेसर सो जयउ । मंगल केलि निवास ।
वासव वंदिय पय कमल । जगह जु पूरइ आस ॥ १ ॥
आसण तपि जपि जोगि दृढु । जो समरइ सिरिसंति ।
तसुघरि सरवरि हंस जिम । नवनिधि नितु विलसंति ॥ २ ॥
संतिकरण भव भय हरण । हरिवंसह सिणगार ।
वन्निहि सामल मनि विमल । नमह सु नेमिकुमार ॥ ३ ॥
मार विडारण पासजिण । बलिजाऊं तुय नाम ।
जसु लागिहिं कलिमलु गलइ । टलइति विघन विराम ॥ ४ ॥
रामा माहि सलक्खणी । मन्नउ तिसला नारि ।
जसु नंदण सिरि वीरजिण । सलहिज्जइ संसारि ॥ ५ ॥
पणमिय गोयमसामिगुरू । अनु गुरु सोहमसामि ।
तसु वंसिहि जे केवि गुरु । तिहि वंदउं सिरि नामि ॥ ६ ॥
इणि परि समरिय देवगुरु । महिम महीरुह कंद ।
गाइसु गुरु आणंद भरि । श्रीजिणकुसल मुणिंद ॥ ७ ॥

मरु मंडलि समियाणउ गाम । धणकण कंचण कुसुमाराम ।
तहिं निवसइ जेल्हागर मंति । जसुजस पसरइ दूरिदिगंति ॥८॥
चन्द्र कुल वर पूनिमचंद । वंदह श्री जिणकुसल मुणिंद ।
नाममंत्र जसु महिम निवास । जो समरइ तसु पूरइ आस ॥६॥
जइतसिरी सुकलीणी नारि । तसुघर मण्डिणि अति सुविचारि ।
तासु पुत्र करमणू इय नाम । सहजिहिं जसुउत्तमपरिणाम ॥१०॥
हभइ हेलि खणिखेलइ गेलि । सयणु माइ मन मोहण वेलि ।
जिम जिम सो परि वाधइबाल ।
तिम तिम महियलि हरप विसाल ॥ ११ ॥
देखहु एवडु पुण्य पयोर । वय लहुडउ पुणि बुद्धिहिं धोर ।
अन्नदिवसिजिणससि गुरुसंगि । कुंयरसुचडियउ संजमरंगि ॥१२
तउघरि आवी जणणी पाय । पणमिय पयउ इसो मन भाउ ।
कथनि तुम्हारइ लेयूं दीख । अच मति देज्यो कांई सीख ॥१३॥
ताम जणणी ताम जणणी भणइ सुणि वच्छ ।
वलिहारी तुहवयणहुं अच्छ । जीव जीवलावन्न मंदिर ॥
तउ वालउ भोलउ सहियतमि । य चिन्नु कह कहवि सुन्दर ।
जं तउ मग्गइ दिक्खसिरि । इय मह मनि न समाइ ॥
जाइफूल कह किम रहइ । गयदं तुय सिरिथाउ ॥ १४ ॥
तउं लहुडउ गरुयउ व्रतभार । वच्छवहंतउ जाणइ सार ।
वृषभभार वृषभे ऊपडइ । वाछरुए ते अधविचि पडइ ॥ १५
रहि रहि कहइ कहावइ लागि । जं तुय भावइ तं तुय मागि ।
परिणाविसु वर उत्तम नारि । सुख भोगवि व्रतपाखइ सारि ॥१६

अम्हहइं हुंती मोटी आस । इण परिमेल्हइं कांइ निरास ।
हुयइ पुत्र कुलवंता जेउ । मात पिता मनि चालइ तेउ ॥ १७ ॥
थोड़ा माहि कह्यु मइ घणु । पूछि वच्छ हिव मन आपणूं।
जयतसिरी तब बोली रही । कुंयरि वात तब निश्चल कही ॥१८॥
अहह दिखाडिय जइ तइं लोभ। तिणि मुझ चित्त न आवइ खोभ ।
पडइ लोहजिणि सुत्तिय वेह । सा किमि पाडइ पत्थर रेह ॥ १९ ॥
लोक माहि जे कहियइ भोग । अंतरंग ते जाण्या रोग ।
नव नव परि जे जगडंत । भवि भवि आपइ दुक्ख दुरंत ॥२०॥
किहां कवणु हउं कुण तुँ मात । कुणु परियणु बंधव कुणतात ।
हियइ विचारी जोवउ मात । मायामय सहु देखउ तात ॥ २१॥
कूड कपट नट विट संबन्ध । द्रोह वंच मद मूर्च्छा बंध ।
भविभमतां मइं कीधा सही । दीक्षाविणु तसु औषध नहीं ॥२२॥
जग आवइ जग जायइ तोइ । आवत जात न पूछइ कोइ ।
आहर जाहर ईम्हइ करइं । पुण्य विणु ओडालउ फिरइ ।
मइं मन कीधउं दृढ़ आपणुँ । रणिचडिया केहउ कांपणुँ ।
तोरइवचनि करी गृह त्याग । कारावसि सुकृतह संभाग ॥२४ ॥
माइ मनाविय तिणि करि बुद्धि । निश्चय एकमनां छइ सिद्धि ।
हिव कुंयर ऊतावल थई । तउ सामहणी ततखिणि थई ॥२५॥
ताम धवल मंगल रवर । मन मेल्हइ हरपि अंकूर ।
वाजइ तिविल तूर नीसाण । पडइ मोह भूमिपति प्राण॥ २६ ॥

तरल तुरंगम चडइ कुमार । अंगि अनोपम तसु सिणगार ।
सिरिवरि सीकरि छत्र ऊमाल । पाछइ लूण उतारइ बाल ॥२७॥

माइ वधावेष दियइ आसीस । करमण नामइ तसुप्रति सीस ।
क्रमि नरनारीचाल्यू सहू । तिणिखणि चिरलउहुय घर रहू ॥२८॥

मारगि पगि पगि नाटक रंग । सुपरिहिं पसरइ दांत जरंग ।
दान सूर अनुयाचक वृन्द । इहुं विहुं पूगउ मन आणंद ॥ २६॥

जेल्हासुत विस्तरि गुरूपासि । आवइ गुरूअइ मन उल्लासि ।
तसु संगमिहरषिउ गुरू सोइ । पात्रलाभि नहु रीजइ कोइ ॥३०॥

विविध रूपितहि मंडियनंदि । गायइ गायण नव नव छंदि ।
ध्यानजलणिआहुतिअन्यान । कीजइतिलजव सरसवध्यान ॥३१॥

॥ भास ॥

जोसिय सिरि जिणचंदगुरु । लाडण तहिं करमण रूपिसुर ।
सजन मेलावइ आवियउए । संयमसिरि नइ परणावियउए ॥३२॥

कुसलकित्ति तसु नामूए । जगि जंगम सोहग ठामूए ।
नारि दियइ तवचाचरीए । गुरू गरूअडि़ दहदिसिसंचरीए ॥३३॥

सहज मनोहर सरि करिए । किर कंठहिं कोइल अवतरीए ।
कडि कसमसत पटोलडीए । किवि गायइ भंभर भोलडीए ॥३४॥

उरलिय लहकइ हारूए । पगि नेउर रण झण कारूए ।
वाला ताला रसि रमइए । खलकत करि कंकण चूडमए ॥३५॥

केलि गर्भ सुकुमालतनु । घनलावन्न घनलीलाभवनु ।
लडहियरंगिहिं ललियमणि । किवि जोयइ टगमग नियनयणि ३६
सहूयइ कउतिग देखि करे । तउ पहुतउ आपण आप घरे ।
सुहगुरुयामिहिं महमहइउए ।

गुरू हरिष्ठग कुललिग मुनि रहइउए ॥ ३७ ॥

सो लघुमुणि वर शुद्धाचार । विनय विवेक विचाराधार ।
नमइ खमइ खामइ सविदीस । एयहु पुन्निहिं लाभइ सीस ॥ ३८
ठामि ठामि पामइ सोभाग । तसुवरि लोक धरइ अनुराग ।
गुरू आपइ विद्याआपणी । थानकि कुण न करइ थापणी ॥३६॥
पापभीरु ससि सोमाकारु । जो साधइ तपु किरिया सारु ।
वायणायरिय क्रमिकीधउसोइ । पुन्निहिंगरुअडियइठां होइ ॥४०॥
गुरुमनि मानिउ सो गुणवंत । जाणिय निय जीविय पज्जंत ।
पाटसीख आयरियह देइ । आपणि सरगह सुख माणेइ ॥४१॥
गुरु आप सकरण साणंद । श्री राजेन्द्रचन्द्रसूरिंद ।
सूरिमंत्र तसु आपइ ताम । श्रीजिनकुशलसूरि इहु नाम ॥४२॥
भवजलनिधि ऊतारण घाटि । श्री जिनचंद मुणीसर पाटि ।
माणिक जिमनव सोवनघाटि । सोहइसूरिसुमुनिवरथाटि ॥४३॥
जसु मंडिय खंडिय थंभण्ट । खण्डिय पाखण्डिय पापंट ।
जो जगि जागइ तेजि पचंड । मोहराय सिरि पाटइ दंड ॥ ४४ ॥
खगिरि फवणु मद नागइदंड । इमवर यरत लेट्य लोहंड
नूकंनइ जिणि जीतउ मोह । शासन चंग चटाविय सोह ॥४५॥

ताम मान मायाहंकार। लहइ पुलंता ते धिक्कार।
मूरख कायर जेय असार। कह किम पामइ ते जयवार ॥४६॥
धमधमंत जिमि धरियउ कोप। खमा खडगि तस कीधउलोप।
इणि परि सुभट पडइ रणखेत्रि। तरुवरपान जेम धुरिचैत्रि ॥४७॥
मयण मल्लजिणि हेलामाटि। हाहा हणियउ हियइ कपाटि।
ब्रह्मतेज महिमा सा जाणि। लीजइ जं वलवत विनाणि ॥४८॥
मुहि मूढ्रिइ आवइ अन्यान। न्यान लकुटि तसु फेडिउ थान।
समकितिसिरि जिणिकीधउ घाउ। भागउ मिथ्यामतभडवाउ ॥४९
इणि परि मोह सेन भंजेवि। दहदिसि जय जय कार लहेवि।
जयत्रहस्त जगि उदयउ सूर। गच्छराज परिपालइ पूर ॥ ५० ॥
आचारिज तरुणप्रभसूरि। जिणि थापिउ जिण शासण सूरि।
किवि वाणारिय किवि उवज्झाय किवि दक्खिय उत्तमकुलजाय
संघपति जिणबिंबपतिट्ठा। विजयवंति जिणि विहिय विसिट्ठा।
मानतुंग सित्तु जय संगि। हुय विहार जसु बुद्धि प्रसंगि ॥ ५२
अवरवि कीधा जे उपगार। तिह हुं जाणुं संख न पार।
जीह सहस जउ मुझ मुखहुंति। तउतसुगुणपरिमाण लहंति ॥५३
संयमसिरि उरमंडलिहार। नव कलपियहिं जो करइ विहार।
खरतरगच्छ रायहुं सिंगार। पालइ पूरव रिपि आचार ॥ ५४॥
जुगप्रधान कमला श्रीकंत। उत्सूत्रह परिहार करंति।
सो मुणिवर पयडंतउ तत्तु। सिंधु देश विहरंतउ पत्तु ॥ ५५
अन्तसमय जाणिय तहि ठाइ। ध्यानि मोनि तपि जपि दृढ़ थाइ
सो सहगुरुमल कसमल धोइ। देराउर पहुतउ सुरलोइ ॥ ५६ ॥

तहि थानक थाप्यउ थिरथूभ । सेवकरइ जण वइठा ऊभ ।
रत्नत्रय आरोपी तिहां । जे पूजइ तिहां दूपण किहां॥ ५७ ॥
थूलिभद्र वयरादिक जेय । सरगिगया जिम नमियइ तेय ।
थूभजेम जिणगणहरकेर । ईहां पुण तिम मधरइ फेर ॥ ५८ ॥
जसु तेरह सतत्रीसइ जन्म । छइताल‍इ सिरि संयम धम्म ।
पाटणि सतहुत्तरइ जुपाट । नवासियइ जसु सग्गहवाट ॥५६॥
भूमंडलि सग्गिहिं पायालि । सचराचर जगि इणि कलिकालि ।
प्रभुप्रताप नवि मानइ जोइ । मइ नयणे नहु दीठउ सोई ॥६०॥
निधन लहइ धणधन्न सुवन्न । पुण्ण हीण पामइ वहुपुन्न ।
असुखी पामइ सुखसंतान । एकमनां, करतां प्रभु ध्यान ॥ ६१ ॥
प्रभुसमरणि आपद सविगलइ । श्रेयशांति सवि संपद मिलइ।
आधि व्याधि चितास ताप । सविछांडइ नहु मंडइव्याप ॥६२॥
पाप दोप नवि लागइ तांह । प्रभुदरसणि उतकंठा जांह ।
सेव तह सुरतरु चियछांह ।दालिद निरचय मेल्हइ वांहु ॥६३॥
विस विसहर विसतर नरनाहु । भूतप्रेतग्रह व्यंतर राहु ।
प्रभु नामहिं तेह न करइपीड । भाजइ भवभय भावठि भीड॥६४
रोग सोग सविनासइ दूरिइ अंधकार जिम ऊगइ सूरि ।
मूरख फीटी पंडित थाइ । प्रभु पसाइ सवि दुरिय पुलाइ ॥६५॥
दिनि दिनि जिनशासनि उद्योत । जहि प्रभु छइ भवसागर पोत
सो जुगवर मइं भेटयउ आज ।
रलिय रहसि सवि कीधा काज ॥६६॥

॥ भास ॥

आजवरंगणि सुरतरु फलियउ । चिंतामणि मइं करयलि कलियउ
उदयउ परमाणंद भरे । ,आजजीह मइं धन्निय गणियइ ।
जुगपवरागम जइ मइ थुणियउ । चन्द्रगच्छ महिमा निलउए ६७
कांइ करहु पृथिवीपति सेवा । कांइ मनावउ देवी देवा ।
चिंता आणह कांइ मनि । वार वार इहु कवितु भणीजइ ।
श्री जिनकुशलसूरि समरीजइ । सरइ काज आयासविणु ॥६८॥
संवतचउद इगासियवरिसिहिं मल्लिकवाहण पुरवरि मनहरसिहिं
अजियजिणेसपसायवसि । कियउ कवित इहु मंगल कारण ।
विघन हरइ पर पाप निवारणु । कोई म संसउ करहमनि ॥६९॥
जिम जिम सेवइ सुरनरराया । श्रीजिनकुशलमुणीसर पाया ।
जयसागर उवझाय तिम । इम जो सुहगुरु गुण अभिनंदइ ।
रिद्धि समृद्धिहिं सो चिरुनंदइ । मनवंछित फलतसु हवइए ॥७०॥

इति श्रीमद्युगप्रधान श्री जिनकुशलसूरींद्राणाम्
चतुष्पदिका सप्ततिका संपूर्णा

श्री जयसागर महोपाध्याय कृता ॥ श्री जिनसिंहसूरि :—
शिष्य पण्डित हेममन्दिर मुनिलिखिता सुखाय ॥ श्री ॥ शं ॥

परिशिष्ट (घ)

श्री जिनकुशलसूरि अष्टोतरशत स्थाने स्थुंभनाम—गर्भित स्तवनम्

वंदीजइ सद्गुरु वरदायी, श्री जिनकुशलसूरि सिरदार।
महीयल मांहे मोटइ दावइ, दीपइ जिम पूरव दिनकार॥ १ ॥वं०॥
मूल थुंभ देराउर महीयल, गुण गिरूओ श्री गाम गडाल।
परता पूरइ परतखि पगि पगि, पर उपकारी परमदयाल॥ २ ॥वं०॥
महिमावंत अधिक मुलताणइ, उच्च अनोपम छइ अधिकार।
सीधपुरइ समरं सच वायउ, नयर किरहोरइ नवसरहार॥ ३ ॥
जेसलमेर सकल जोधाणइ, नागोरइ प्रणमइ नर वृन्द।
मेदनीतटइ देखी मन उलहसइ, देवलवाडइ जाणि दिणंद॥ ४॥ वं॥
उग्रसेनपुर पटण अलवर, अमरसरइ अउरंगाबाद।
नडुलाइ वद्धनपुर नवहर, उद्योतनपुर अम्मदाबाद॥ ५ ॥ वं।
सांगानेर विहार सुशोभित, मालपुरइ मनमोहन रूप।
जयतारणि अरियण सहु जीपइ, भाव धरीनइ वंदे भूप॥ ६ ॥ वं॥
किसनगढ़इ कल्पतरु कहीयइ, राजगढ़इ चंपा रतलाम।
समीयाणइ सोभित अति सोहइ, साचोरइ सारे सब काम॥७॥ वं॥
सोवनगिरि मंडण सीरोही, नूतनपुर नित चढ़तउ नूर।
पूजउ सेत्रुंजइ पद पंकज, सूरति वंदु ऊगत सूर॥ ८ ॥ वं॥
गिरनारइ तुझ गुण सहु गावइ, जावइ दुख दोहग जंजाल।
दीवनगर देख्यां तुझ दरसण, मांगी फलइ मनोरथ माल॥ ६ ॥ वं॥

ईडर थंभ अनोपम ओपइ, आसोपइ सुरतरु अवतार।
पुर खंभाइत पाटण पाली, दिल्लीगढ़ दउलति दातार ॥ १० ॥ वं ॥
मांगलउर वीरमपुर मनहर, अंजारइ मन अधिक उल्हास।
भली बात करइ भुजनगरइ, मंडही मंदिर महिम निवास ॥११॥ वं ॥
लखपति महिमपुरी लाहोरइ, वंदइ कर जोड़ी वड गात।
मेहरइ मांहेदालिद्र भंजइ, अजमेरइ मोटी अखियात ॥ १२ ॥ वं॥
पूगल जंगल पूनासर प्रभु, पहुंचाडइ सव बात प्रमाण।
डिडुआणइ आनइ सहु डेरइ सेरगढइ सवलउ सनमाण ॥१३॥ वं॥
फत्तेपुर बहु फल फूलइ करि, पूजइ गुरु पद पङ्कज सार।
भावभगति भटनेर भली विधि, फलवधिपुर फलीयउ सहकार ॥१४॥
मइडीचक्क सुथान मरोटइ, अमरकोट मानइ सहु आंण।
संचल कम्बल मइ सदगुरुना, सेवइ पद युग चतुर सुजाण ॥ १५ ॥
दुखभंजन कहीयइ देवीकर, ग्वालेरइं कहीयइ गुणगेह।
सलहीजइ सिरवाडि सिरुंजइ, देखी विकसइ सारी देह ॥१६॥ वं ॥
विक्रमपुर वडली बीजापुर, खीमसरइ प्रणम्यां नितु खेम।
बाहडमेरु सनूर विशालइ, पहुकरणइ पाल्हणपुर प्रेम ॥१७॥ वं ॥
चंद समान कहुँ चन्देरी, तोडइ वंछित द्यइ ततकाल।
कुंभलमेरु सकल सुखकारक, सहर रिणी मांहे सुविशाल ॥१८॥ वं ॥
सरसइ धन वरसइ सेवक घरि, लूणकरणसर लील विलास।
खरी वात कहां खेजडलइ, पचीयाखइं नितु पुण्य प्रकास ॥१९॥
देवीखेडइ दुसमण फेड़इ, सइंभर पूरइ सगला थोक।
झूठइ रायपुरइ जस झलकइ, राधनपुर द्यइ वंछित रोक ॥ २०॥

मउज करइ सेवक नइं महेवइ गुंदयचइ सदगुरु गुणवंत ।
सारणपुर सुणीयइ सेत्रावइ, जयतपुरइं जुगवर जयवंत ॥२१॥ वं०॥
वीलाडइ वंदु वडलुंदइ, पीपाडइ जस प्रवल पडूर।
कामित दायक कापरहेडइ, दुखियां दुख गमाडइ दूर ॥२२॥ वं ॥
लाभ घणउ द्यइ सुगुरु लवेरइ, वालरवइ तिमरी सुखवास ।
कीरति अधिकी कुंडकी कहीयइ, रोहीठपिण सुणियउ रहवास ॥२३॥
महर करी महाजन प्रतिपालइ, संभालइ निज सेवक आय ।
सुप्रसन्न होवइ सानिधकारी, पंढीयां अटवी पाणीपाय ॥२४॥ वं ॥
आसति अधिकी जे मन आणी, चरणकमल सेवइ चित्त लाय।
तिहां घरिनवनिधि होवइ ततखिण, कलिमें निरमल सुजस कहाय॥२५॥
वड दरबारइ दोपी दुरजन, करि न सकइ कांइ भुंडउ काम ।
सद्गुरु सुनिजरि करि सेवकनी, महीयलमांहि वधारइ मांम ॥२६॥वं॥
पूरव दक्षिण उत्तर पश्चिम, जोति सकल त्रिहुं लोकइ जास ।
एक अनेक प्रकारइं इण जुगि, ईहक जननी पूरइ आस ॥ २७ ॥ वं ॥
तीर वहइ जिहां वखतर तूटइ, तेज असम झलकइं तरवारि ।
जलवट थलवट जंगल मांहि, एहवो ठामइंअ तुं आधारि ॥ २८ ॥ वं॥
पाठक 'ललितकीरति' पसायइ, 'राजहरष' वंदइ धरि राग ।
अट्ठोत्तर सउ नामइं अद्भुत, सुख सम्पति होवइ सोभाग ॥२९॥ वं ॥
